ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 15 जून 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 15 जून 2025 से 21 जून 2025

आषाढ़ कृ. 04 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 24, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

डीएवी सैक्टर-14, फरीदाबाद में रक्तदान शिविर सम्पन्न

आर्य युवा समाज डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सैक्टर 14 फरीदाबाद में 'रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। जिसका उद्देश्य लोगों के जीवन को बचाना था। इस अवसर पर थैलेसीमिया एवं मैमोग्राफी संबंधित जांच शिविर भी लगाए गए।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि हरियाणा रेड क्रॉस सोसाइटी उपाध्यक्ष श्री अंकुश मिगलानी जी के अतिरिक्त अनेक रोटेरियन उपस्थित हुए।

कार्यक्रम का उद्घाटन स्कूल के प्रांगण में प्रातः 7:30 बजे मुख्य अतिथि श्री अंकुश मिगलानी जीके कर कमलों द्वारा फीता काटकर किया गया। इस स्कूल की प्रधानाचार्या श्रीमती अनीता गौतम ने मुख्य अतिथि माननीय श्री अंकुश मिगलानी एवं अतिथियों को प्लांटर भेंट करके सम्मानित किया। अभिभावकगण, शिक्षकगण, शहर के समाजसेवियों ने रक्तदान करके जीवन की महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सायं तक चले रक्तदान शिविर में 171 यूनिट रक्तदान हुआ। लगभग 25 लोगों ने मैमोग्राफी करवाई। स्वास्थ्य शिविर में लगभग 365 लोगों ने स्वास्थ्य जांच करवाई।

मुख्य अतिथि श्री अंकुश मिगलानी ने अपने वक्तव्य में कहा कि इस प्रकार के शिविर का आयोजन समय–समय पर किया जाना चाहिए; क्योंकि रक्तदान से बहुत से लोगों की जान बचाई जा सकती है।

प्रधानाचार्या श्रीमती अनीता गौतम ने अपने वक्तव्य में कहा कि डी.ए.वी. मैनेजमेंट कमेटी, रोटरी क्लब, विद्यालय के इंटरेक्ट क्लब के प्रयास से ही रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। रक्तदान किसी एक व्यक्ति की जान ही नहीं बचाता, बल्कि उसके परिवार से जुड़े व्यक्तियों पर भी उपकार करता है। युवा वर्ग का इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान होता है। हमें भविष्य में भी इस दिशा में कार्य करने चाहिए। वास्तव में रक्तदान महादान है।

डीएवी धर्मशाला के नए भवन का शिलान्यास व भूमि पूजन

भगीरथ डीएवी पब्लिक स्कूल धर्मशाला में एक नये भवन का शिलान्यास डीएवी प्रबन्धकर्त्री समिति के वरिष्ठ उपप्रधान श्री प्रबोध महाजन के करकमलों से सम्पन्न हो गया। शिलान्यास से पूर्व भूमि–पूजन किया गया।

प्राचार्य डॉ. विपिन जिष्टु ने बताया कि इस भवन के लिए 1574 वर्गफुट का एक भूखण्ड खरीदा गया है।

शिलान्यास के समय स्थानीय प्रबन्धक समिति के सदस्यों, विद्यालय के शिक्षक शिक्षिकाओं, छात्रों के साथ उनके अभिभावकों, आर्यसमाज धर्मशाला के पदाधिकारियों तथा शहर के गणमान्य नागरिकों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की।

श्री प्रबोध महाजन ने अपने संबोधन में विद्यालय के शैक्षिक ढांचे को मज़बूत करने का आह्वान किया और नए भवन के प्रथम फेज़ को शीघ्रातिशीघ्र तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया।

इस अवसर पर श्री वी.के. यादव, ए.आर.ओ., श्री नमित शर्मा, मैनेजर, के अतिरिक्त क्षेत्र के प्राचार्य भी उपस्थित रहे।

हंसराज पब्लिक स्कूल ने जागरूकता पूर्वक मनाया पृथिवी दिवस

हंसराज पब्लिक स्कूल, पंचकूला ने पृथिवी दिवस को उत्साहपूर्वक और पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने वाली गतिविधियों के साथ मनाया। उद्देश्य था छात्रों को पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाना।

एक विशेष सभा का आयोजन किया गया, जिसमें छात्रों ने ***'धरती चली चाँद पर रहने'*** शीर्षक से एक प्रभावशाली और विचारोत्तेजक नाट्य प्रस्तुति दी। इस प्रस्तुति में मनुष्य की धरती के प्रति लापरवाही के दुष्परिणामों को उजागर किया गया और यह दर्शाया गया कि कैसे भविष्य में मानव जाति को चंद्रमा पर शरण लेनी पड़ सकती है क्योंकि पृथिवी की स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही है।

छात्रों ने यह स्पष्ट संदेश दिया कि इससे पहले कि बहुत देर हो जाए पृथ्वी को बचाना नितान आवश्यक है।

सभा को संबोधित करते हुए प्रधानाचार्या श्रीमती जया भारद्वाज ने छात्रों से पृथ्वी के जिम्मेदार नागरिक बनने का आग्रह किया। उन्होंने कहा, "पृथ्वी दिवस केवल हमारे ग्रह का उत्सव नहीं, बल्कि इसे संरक्षित करने की हमारी ज़िम्मेदारी की याद दिलाने का दिन है। पृथ्वी का भविष्य आप जैसे युवा मनों के हाथ में है।"

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 15 जून 2025 से 21 जून 2025

निर्भय बनूँ

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

यदन्ति यच्च दूरके, भयं विन्दति मामिह।
पवमान वि तज्जहि।।

ऋग् ९.६४.२१

ऋषिः **मैत्रावरूणिः वसिष्ठः।** देवता **पवमानः सोमः।** छन्दः **गायत्री।**

● (**यत्**) जो, (**अन्ति**) समीप, (**यत् च**) और जो, (**दूरके**) दूर, (**इह**) यहाँ, (**मां**) मुझे, (**भय**) भय, (**विन्दति**) प्राप्त करता है, (**पवमान**) हे सर्वत्र–संचारी, पवित्रकर्ता सोम प्रभु!, (**तत्**) उसे, (**वि जहि**) विनष्ट करो।

● मनुष्य प्राणियों में सबसे अधिक बुद्धिमान् होता हुआ भी सबसे अधिक भयशील है। अन्य सब पशु, पक्षी, सरीसृप, कीट, पतंग आदि जन्तु भयावह जंगलों में भी निर्भय विचरते हैं। पर मानव घर में भी भयभीत रहता है, दंश, मशक, वृश्चिक, सर्प, आधि, व्याधि, चोर, शत्रु, शासक आदि के भय से व्याकुल रहता है। ये भय आत्म–विश्वास और प्रभु–विश्वास की कमी के कारण होते हैं।

मैं भी समीप के और दूर के अनेक प्रकार के भयों से घिरा हुआ हूँ। समीप में मुझे अपने पड़ोसियों से, साथी–संगियों से, यहाँ तक कि घर के सदस्यों से भी भय लगा रहता है कि ये कहीं मेरा कुछ अनिष्ट न कर दें। अपने मन में सन्देह का बीज बोकर मैं सोचता हूँ कि कहीं ये मेरी हत्या न कर दें, मेरा धन न हड़प लें, मेरा रथ न हर लें। नींद में भी मुझे चोरों के सपने आते है। दूर जाता हूँ। दूर जाता हूँ तो वहाँ भी भय पीछा नहीं छोड़ता। सोचता हूँ कहीं रेलगाड़ी न टकरा जाए, कहीं मोटरकार आदि यान दुर्घटना–ग्रस्त न हो जाए, कहीं लुटेरे मुझे लूट न लें, कहीं मेरे दूर यात्रा पर आये होने के कारण मेरी अनुपस्थिति में परिवार पर कोई संकट न आ जाए। ये सब तो ऐसे भय हैं, जो व्यर्थ ही मेरे शंकाशील मन को उद्विग्न किए रखते हैं; पर इनके अतिरिक्त कई भय सचमुच के भी होते हैं, जिनके भय का कारण वास्तव में उपस्थित होता है। उस समय भी मैं भय–कारणों का प्रतीकार करने के स्थान पर भयग्रस्त हुआ निष्कर्मा खड़ा रहता हूँ। मैं इतना भयशील हूँ कि मुझे सन्ध्या–वन्दन आदि सत्कर्म करते हुए भी भय व्यापे रहता है कि कहीं कोई मेरा उपहास न करे।

इन दूर के तथा समीप के सभी भयों को हे मेरे प्रभु! तुम्हीं दूर कर सकते हो। तुम्हारा सच्चा ध्यान मेरे अन्दर आत्म–संबल उत्पन्न कर सकता है। तुम 'पवमान' हो, सर्वत्र–संचारी, सर्वव्यापी और अन्तःकरण को पवित्र करनेवाले हो। तुम सर्वत्र मेरे चित्त की भय–दशा को जानकर और उससे मुझे मुक्त कर पवित्र करते रहो। हे पवित्रता के देव! तुम मेरे भयों को समूल विनष्ट कर दो, जिससे फिर कभी भय मेरे मानस को आक्रान्त न कर सके। समीप और दूर के सब स्थानों को, सब दिशाओं को, मेरे लिए निर्भय कर दो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

'ईश्वर, जीव और प्रकृति यह तीन तत्त्व नित्य हैं शेष सारा दृश्यमान जगत् अनित्य है' ऐसा कहकर स्वामी जी ने योग दर्शन के आधार पर अविद्या के चार रूपों का वर्णन आरम्भ किया।

अविद्या का चौथा रूप है अनात्म में आत्मबुद्धि करा लेना और आत्मा को जड़ मान लेना।

स्वामी जी ने कहा – साधक में जब तक विवेक बुद्धि उत्पन्न नहीं होती तब तक यह तत्त्वज्ञान के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता। ईश्वर जीव और प्रकृति के अन्तर को जान लेना विवेक की पहली मंज़िल है।

नित्यानित्य–विवेक को लेकर ऋषि दयानन्द द्वारा 'सत्यार्थप्रकाश' के नवम् सम्मुलास में चिन्तन को उद्धृत किया। ऋषि द्वारा किए तीन शरीरों–स्थूल, सूक्ष्म और कारण का वर्णन किया और जीव के इन तीनों से पृथक् होने की बात कही। महर्षि द्वारा की गई व्याख्या से तीन निष्कर्ष निकाले – जीवात्मा अन्य तीन प्रकार के शरीरों से पृथक् है; मानव अच्छे और बुरे कर्म में प्रवृत्त कैसे होता है; हृदयाकाश में विराजमान परमात्मा शक्ति से एक आकाशवाणी होती है जिससे अच्छे कर्मों के लिए आनन्द, उत्साह और निर्भयता तथा बुरे कर्मों के प्रति भय, लज्जा और शंका उत्पन्न होते हैं।

तत्त्वज्ञान का दूसरा साधन है वैराग्य ! स्वामी जी ने श्री शंकराचार्य, योगदर्शन तथा गीता के आधार पर वैराग्य का स्वरूप स्पष्ट किया।

वैराग्य का अर्थ केवल सांसारिक वस्तुओं का त्याग नहीं। मन से लोक–परलोक के हर प्रकार के फल की तृष्णा को निकाल देने का नाम वैराग्य है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि सब कुछ छोड़कर वन में जाकर बैठ जायें। सारे मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते। संन्यासी केवल वही बन सकता है जिसने हृदय से स्वार्थ त्याग दिया हो। कर्मों का भी सर्वथा त्याग नहीं हो सकता। कर्म तो करने ही पड़ेंगे, लेकिन निष्काम होकर–

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाऽधिगच्छति।।

..... अब आगे

त्याग और तप आधार–शिला है

सनातन वैदिक संस्कृति की आधार–शिला त्याग और तप की चट्टान पर ही रखी गई थी। मानव–जीवन को जिन चार आश्रमों में बाँटा गया उनका आधार है ही तप और त्याग 'ब्रह्मचर्य' तो तप–ही– तप है। गृहस्थ–आश्रम त्याग और तप का आश्रम है। पति, पत्नी के लिए और पत्नी, पति के लिए त्याग तप करते हैं। सन्तान होने पर फिर माता–पिता मिलकर सन्तान के लिए त्याग और तप करते हैं। वानप्रस्थ–आश्रम फिर तप का आश्रम है। गृहस्थ में रहते हुए शरीर तथा मन में जो त्रुटियाँ आ गई हों, उनको दूर करने के लिए फिर तप तपना होता है। अब चौथा आश्रम संन्यास आता है–यह भी तप और त्याग का आश्रम है। गृहस्थ भी त्याग–तप का और संन्यास भी त्याग–तप का आश्रम बतलाया गया है। दोनों में तब भेद क्या हुआ ? भेद यह है कि गृहस्थ में तो परिवार, सम्बन्धियों, मित्रों या समाज और देश के लिए तप त्याग किया जाता है और संन्यास में सारे संसार के कल्याण तथा मोक्ष के लिए त्याग और तप किया जाता है।

इसी प्रकार वैदिक संस्कृति में जो यज्ञों का विधान है, उसका प्रयोजन भी त्याग और वैराग्य ही है।

हमारी संस्कृति कोरे उपदेश नहीं देती अपितु उन उपदेशों को जीवन में घटाकर दिखला देती है। हमारे ऋषियों ने कर्मों तथा भोगों से पृथक् रहने को असम्भव समझकर भोग और त्याग का ऐसा सुन्दर समन्वय किया कि कर्म करते हुए भी अलिप्त रहने का रहस्य खोज निकाला और वह रहस्य यह है कि हर एक वर्ण तथा आश्रमवाला अपना कर्त्तव्य समझकर कर्म करे, फल की इच्छा त्याग दे। प्रतिदिन हवन–यज्ञ करने का विधान करते हुए ऋषियों ने इस पवित्र कर्म तथा कर्म–फल से अलिप्त रहने के लिए यह मर्यादा रखी कि प्रत्येक आहुति के पश्चात् जो बड़े प्रेम, श्रद्धा और भक्ति से अग्नि को परमात्मा और सब देवताओं का मुख समझकर भेंट की जा रही है,

उसके अन्त में ये शब्द कहे जाते हैं–**"इदमग्नये इदं न मम"** 'यह तो मेरी नहीं है, भगवन्, तेरी ही है' और ऐसा बार–बार दुहराया जाता है ताकि वैराग्य और त्याग की भावना दृढ़ होती चली जाए।

प्राण भी प्रभु के अर्पण

यज्ञ का अर्थ ही त्याग है। इस त्याग और वैराग्य को वेद भगवान् ने इतनी पराकाष्ठा तक पहुँचाया कि यह आदेश दे दिया :

यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।

'सारे यज्ञ भी प्रभु प्यारे की प्रसन्नता में समर्पण हैं।'

'यजुर्वेद' अध्याय 18 के मन्त्र 29 की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द के ये शब्द कितने मार्मिक हैं :

"यज्ञ नाम विष्णु का है जो सब जगत् में व्यापक हो रहा है उसी परमेश्वर के अर्थ सब वस्तु समर्पित कर देनी चाहिए। इस विषय में यह मन्त्र है कि सब मनुष्य अपनी आयु को ईश्वर की सेवा और उसकी आज्ञा–पालन में समर्पित करें और अपना प्राण भी ईश्वर के अर्थ समर्पित कर देवें।

जो प्रत्यक्ष प्रमाण और आँख, जो श्रवण विद्या और शब्द प्रमाणादि, वाणी, मन और विज्ञान, जीव तथा चारों वेदों को पढ़ के जो पुरुषार्थ किया है; जो प्रकाश, सब सुख, उत्तम कर्मों का फल और स्थान, तीन प्रकार का जो यज्ञ किया जाता है–ये सब ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ समर्पित कर देना आवश्यक है। स्तुति का समूह, सब क्रियाओं की विद्या ऋग्वेद अर्थात् स्तुति स्तोत्र, सब गान करने की विद्या, अथर्ववेद की विद्या, बड़े–बड़े सब पदार्थ और शिल्प विद्या आदि के फलों में से जो फल अपने अधीन हों, वे सब परमेश्वर के समर्पण कर देवे कि सब वस्तु ईश्वर ही की बनाई है।"

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

भगवन् ! सब–कुछ तेरा है, मेरा क्या है ?

मेरा मुझमें कुछ नहीं,
जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते,
क्या लागत है मोर।।

योगी और अयोगी में भेद

यही सच्चा वैराग्य और त्याग है। ऐसी वैराग्य–वृत्ति बनाकर जब सारे सांसारिक व्यवहार किए जाएँ तो फिर किसी रूप में भी कष्ट नहीं होता। हम अपनी सामर्थ्य और बुद्धि के अनुसार जीवन को यज्ञरूप बनाकर अपना कर्त्तव्य पूर्ण करते चले जाएँ और फल प्रभु पर छोड़ दें तो इसका परिणाम बहुत मीठा होता है। महर्षि दयानन्द ने ***'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका'*** के उपासना–विषय में योगी और अयोगी या वैरागी और रागी का दृश्य सुन्दर शब्दों में खींचा है। महाराज वेद–मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं :

"उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष–शोकरहित और संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष–शोकरूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की तो वृत्ति ज्ञानरूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति अन्धकार में फँसती जाती है।"

उपासक या योगी और संसारी बाहर के चिह्नों से नहीं बनता अपितु हृदय की वृत्ति या भावना से बनता है। वस्त्र त्याग देने से, वस्त्र रंग लेने से तो आश्रम मर्यादा केवल बाह्य रूप से पूरी हो जाए तो हो जाए, मन रंगे बिना वास्तविक रूप से पूरी नहीं होती। ये पंक्तियाँ लिखते हुए एक घटना मुझे याद आ रही है :

स्वामी सर्वदानन्द और महात्मा हंसराज

अजमेर नगरी से बाहर एक विशाल मैदान में 'ऋषिनिर्वाणवाटिका' के निकट ही महर्षि स्वामी दयानन्द की निर्वाण–अर्धशताब्दी मनाई जा रही थी। त्याग और तप की मूर्ति महात्मा हंसराज भी एक कैम्प में विराजमान थे। वीतराग सच्चे संन्यासी स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने साधु–सन्तों के लिए एक पृथक् लंगर जारी किया हुआ था। एक दिन उसी लंगर में मैं श्री स्वामी सर्वदानन्द जी की सेवा में बैठा था कि इतने में तीन–चार आर्य संन्यासी श्री स्वामी जी के पास पहुँचे और कहने लगे कि – "हम आपकी सेवा में एक निवेदन लेकर आए हैं।" श्री स्वामी जी ने पूछा – "क्या बात है ?" संन्यासी कहने लगे – "हमारी इच्छा यह है कि महात्मा हंसराज जी के पास जाकर साधु–मण्डली की ओर से यह प्रार्थना की जाए कि वे संन्यास धारण कर लें और इस कार्य के लिए आप भी हमारे साथ चलें।" श्री स्वामी सर्वदानन्द जी मुस्कराए और कहने लगे –

"क्या महात्मा हंसराज जी ने संन्यास नहीं लिया हुआ ? सुनो ! हममें से कितने ही संन्यासियों से हंसराज जी बहुत अधिक संन्यासी हैं। उन्होंने केवल वस्त्र नहीं रंगे, अन्यथा उनका सारा जीवन ही संन्यास, त्याग और तप का जीवन रहा है। बाहर का चिह्न न हुआ तो क्या ? उनके पास इस बात के लिए जाने का विचार छोड़ दो। मैं तो उनको अपने से अधिक संन्यासी समझता हूँ। मैं किस मुँह से उनके सामने संन्यास का प्रस्ताव रखूँ ?"

यह सुनकर वे महानुभाव चले गए। निस्सन्देह वैराग्य, त्याग, संन्यास हृदय की वस्तु है और महात्मा हंसराज जी का तो सारा जीवन, बाल्य–काल से लेकर मृत्यु पर्यन्त, सच्चे त्यागियों–वैरागियों ही का जीवन था। अन्य जो भी महात्मा ऐसा जीवन व्यतीत करते हैं उनको तो संन्यास लेने की विशेष आवश्यकता नहीं, परन्तु जो लोग सारी आयु धन कमाने, स्वार्थ पूरा करने और विरोचन बुद्धि बनकर युवा अवस्था से वृद्ध अवस्था तक पहुँचकर भी उन्हीं धन्धों में पड़े रहते हैं, उनको जीवन के अन्तिम दिनों में तो सब झगड़े छोड़कर वैराग्य की ओर झुकना चाहिए। कपड़े रंगे या न रंगे, परन्तु मन को रंगने के लिए तो रंगरेज के कारखाने में पहुँचाएँ। महर्षि दयानन्द ने तो 'सत्यार्थप्रकाश' के पंचम समुल्लास में स्पष्ट लिखा है :

"जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता हैं क्योंकि इसके बिना विद्या–धर्म कभी नहीं बढ़ सकते।"

संन्यास के अर्थ सर्व–त्याग

'हठयोग प्रदीपिका' में यथार्थ कहा है कि :

न वेषधारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा।
क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेतन्न संशयः।।

'गेरू–रंगे वस्त्र आदि का धारण सिद्धि का कारण नहीं और योगशास्त्र की कथा भी सिद्धि का कारण नहीं; सिद्धि का कारण तो क्रिया ही है। यह सत्य है, इसमें संशय नहीं।'

इस क्रिया ही में प्रवृत्त होने का प्रयत्न करो। आज जो सच्चे संन्यासियों की ओर से भी जनता उपराम होती चली जा रही है, इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि गेरुए वस्त्रों में बहुधा अब वह वैराग्य, तप दिखलाई नहीं देता जो पूर्वकाल में था। संन्यास का अर्थ है सर्वत्याग और सर्वत्याग या पूर्ण वैराग्य के बिना मुक्ति का अधिकारी कोई नहीं बन सकता। इसीलिए कितनी ही स्मृतियों में संन्यासग्रहण आवश्यक बतलाया है तथा 'अङ्गिरःस्मृति' में तो यहाँ तक लिख दिया है कि :

संन्यसेद् ब्रह्मचर्येण संन्यसेद्वा गृहादपि।
वनाद्वा संन्यसेद्विद्वानातुरो वाथ दुखितः।।

'ब्रह्मचर्य से ही संन्यास धारण करे वा गृहस्थाश्रम से करे अथवा गृस्थाश्रम से करे। मरण के समय, क्लेश करके आतुर हुआ वा ज्वरादि से दुःखी हुआ भी संन्यास धारण करे; अर्थात् संन्यास करके मरने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।'

संन्यास या त्याग को इतना आवश्यक समझा गया है कि 'विवेकचूड़ामणि' में वैराग्य ही से समाधि अवस्था में पहुँचने का विधान है। लिखा है :

"अत्यन्त वैराग्यवान् को ही समाधि–लाभ होता है। समाधिस्थ पुरुष को ही दृढ़ बोध होता है। सुदृढ़ बोधवान् का ही संसार–बन्धन छूटता है। संसार–बन्धन से छूटनेवाला नित्यानन्द का अनुभव करता है।"

वैराग्य क्या है ?

यह कैसे समझा जाए कि वैराग्य हो गया है ? इसकी कसौटी 'विवेकचूड़ामणि' में यह बतलाई है :

'भोग्य वस्तुओं में वासना का उदय न होना, वैराग्य की चरम अवधि है।'

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने 'सत्यार्थप्रकाश' और 'संस्कारविधि' दोनों में संन्यास–आश्रम में प्रवेश करने का आदेश दिया है। परन्तु साथ ही 'कठोपनिषद्' का एक वाक्य देकर दुराचारियों को संन्यास से दूर रहने ही के लिए आज्ञा दी है। 'सत्यार्थप्रकाश' के पंचम समुल्लास में यह वाक्य है :

"जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं है, जिसका आत्मा योगी नहीं, और जिसका मन शान्त नहीं, वह संन्यास लेके भी अज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता।"

(कठोपनिषद् वल्ली 2, मं० 23)

संन्यास लेने का विधान करते हुए 'यजुर्वेद ब्राह्मण' का मन्त्र तथा 'मनुस्मृति' के दो श्लोक देकर महर्षि ने लिखा है :

"प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत–शिखादि चिह्नों को छोड़. आहवनीयादि पाँच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पाँच प्राणों में आरोप करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकलकर संन्यासी हो जाए। सब भूत प्राणिमात्र को जो अभयदान देकर घर से निकल के संन्यासी होता है, उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वर प्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उपदेश करनेवाले संन्यासी के लिए प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्द–स्वरूप लोक प्राप्त होता है।"

क्रमशः

आध्यात्मिक दर्शन और योग

● स्मृति शेष श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

{वैदिक जी के अनन्त यात्रा पर चले जाने के बाद कुछ लेखों की हस्तलिखित प्रतियाँ उनके सुयोग्य पुत्र ने हमें भेजीं थीं। उन्हीं में से यह लेख पाठकों के लिए प्रस्तुत है!}

यद्यपि सांख्य दर्शन में कपिल मुनि ने उपादान कारण प्रकृति का वर्णन किया है, तथापि वे अनीश्वरवादी नहीं थे। उन्होंने– ईश्वर, वेद, पुनर्जन्म, मुक्ति को भी स्वीकार किया है।

'स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता।' (सा. द. 3/56) वही सर्वज्ञ और सबका कर्त्ता है अर्थात् वह चेतन तत्व ईश्वर, प्रकृति जिसके अधीन ज्ञान, व्यवस्था और नियमपूर्वक पुरुष के अपवर्ग के लिए प्रवृत्त हो रही है, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। **'ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा।'** (सा.द. 3/57) सांख्य ने वेदों को अपौरुषेय, ईश्वरीय ज्ञान और आप्त प्रमाण माना है। **'न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्।'** (सा. द. 5/56) उन वेदों को बनाने वाला कोई पुरुष नहीं दिखलाई देता है, इसलिए उनका पौरुषेयत्व नहीं बन सकता। **'निज शक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्।'** (सा.द. 5/51) अर्थात् अपने निज (स्वाभाविक) शक्ति द्वारा प्रकट होने से (वेदों की) स्वतः प्रमाणता है।

योगदर्शन में एक जगह कहा गया है कि "उस (ईश्वर) में सर्वज्ञ होना ऐसा निमित्त है जो उससे अधिक किसी में नहीं।" **'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्'** (1/25) ईश्वर को इस प्रकार समस्त ज्ञान का स्रोत कहते हुए बतलाया गया है कि वह (ईश्वर), जिसका काल विभाग नहीं कर सकता, पूर्ण (देव्य) ऋषियों का भी गुरु है। **'स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेना ऽनवच्छेदात्।'** (योग. द. 2/31) (योग. द. 1/26) अर्थात् उसने जगत् के प्रारम्भ में वेदरूपी ज्ञान देकर मनुष्यों को शिक्षित बनाया। यह दर्शन भी सिद्ध करता है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और इसलिए स्वतः प्रमाण हैं।

'न कारणलयात्कृतकृत्यता मन्नवदुत्थनात।' (सा. द. 3/54) कारण में लीन होने से पुरुष को कृत कृत्यता नहीं हो सकती, क्योंकि डुबकी लगाने वाले के समान फिर ऊपर उठना होता है। इस विषय में योग दर्शन –1/19 की व्याख्या देखिए–अर्थात् प्रकृतिलय होना मुक्ति नहीं क्योंकि जिस प्रकार डुबकी लगाने वाले को श्वास लेने के लिए ऊपर उठना होता है, इसी प्रकार प्रकृतिलयों को भी एक नियत समय के पश्चात् विवेकज्ञान द्वारा स्वरूपावस्थिति प्राप्त करने के लिए प्रकृतिलीनता से निकलकर फिर जन्म लेना होता है।

सांख्य ने अपने सारे सिद्धान्तों को वेद के आधार पर माना है और उनका श्रुतियों से अविरोध सिद्ध किया है, जैसे **'निर्गुणादि श्रुतिविरोधश्चेति'** (सा.द. 1/54) निर्गुणादि श्रुतियों से भी विरोध है। **'पारम्पर्यणतत्सिद्धौ विमुक्ति श्रुतिः।'** (सा.द. 6/58) परम्परा से उस मोक्ष की सिद्धि में मुक्ति प्रतिपादक श्रुति है। **'समाधि, सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्म रूपता'** (सा. द. 5/116) समाधि सुषुप्तिः तथा मोक्ष में ब्रह्मरूपता हो जाती है। अर्थात् मुक्ति में, मुक्तजीव सूक्ष्म शरीर से परे, केवल तुरीय शरीर से जिसमें उसका केवल पवित्र सामर्थ्य ही रहता है। 24 (चौबीस) प्रकार सामर्थ्ययुक्त जीव है। इसी से मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति का भोग करता है। जो मुक्ति में जीव का लय होता तो मुक्ति का सुख कौन भोगता ? और जो जीव के नाश ही को मुक्ति समझते हैं, वे महामूढ़ हैं क्योंकि मुक्तजीव की यह (पहचान) है कि दुःखों से छूटकर आनन्दस्वरूप, सर्वव्यापक, अनन्त, परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना, उसी से वह मुक्ति का आनन्द भोग करता है। ऋषि दयानन्द के शब्दों में जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाला रहता है, परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता और दूसरी बात यह है कि – **"अनन्त आनन्द भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीवों में नहीं, इसलिए अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिनके साधन अनित्य हैं उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता।"**

अतः ब्रह्मरूपता का अर्थ है उसके आनन्द में रहना, किन्तु जब मुक्तजीव की अवधि समाप्त हो जाती है तब ईश्वरीय नियम द्वारा उसकी लीनता से निकलकर ऊँचे योगियों के कुल में जन्म दिलाती है।

मुक्ति के विषय में इससे अधिक जानकारी नहीं हो सकती क्योंकि कोई मुक्तजीव, मुक्ति सुख का वर्णन नहीं कर सकता। हाँ, प्रत्यक्षरूप में स्थूल मध्याकर्षण जैसे–सूक्ष्म–समाधितक पहुँच जाने का वर्णन किया जा सकता है।

योगाभ्यास द्वारा – सब वृतियों के निरोध होने पर साधक की क्या अवस्था होती है? **'दता द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।।'** (प. योग. द. सू. 3) तब द्रष्टा की (शुद्ध परमात्मा) स्वरूप में अवस्थिति होती है।"

जो योगी आत्मसाक्षात्कार के आगे आनन्द का यत्न करते हैं, वे शरीरान्त होने पर विदेह (शरीर रहित) अवस्था में कैवल्य–पद जैसी स्थिति को प्राप्त किए हुए, इसी आनन्द को भोगते रहते हैं। यह विदेहावस्था विचारानुगत भूमि में बतलाए हुए ब्रह्मलोक पर्यन्त सूक्ष्म लोकों से अधिक सूक्ष्म, अधिक आनन्द और अधिक अवधिवाली है, किन्तु यह भी बन्धन रूप ही है, कैवल्य अर्थात् वास्तविक मुक्ति नहीं यथा– **'ना नन्दाभिन्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात्।'** (सा. द. 5/74) आनन्द का प्रकट हो जाना मुक्ति नहीं है, (क्योंकि वह आत्मा का) धर्म नहीं है (किन्तु अन्तःकरण का धर्म है)।

ईश्वर के अनुग्रह द्वारा इन शेष व्युत्थान के संस्कारों के निवृत्त होने पर चित्र के गुणों के अपने कारण में लीन होने पर ये योगी शुद्ध परमात्मस्वरूप में अवस्थिति प्राप्त करते हैं यथा –**'कार्यत्ययेतदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्।'** (वेदा. द. 4/3/10) ब्रह्मलोक (आदित्य लोक = विशुद्ध सत्वमय चित्त) में पहुँचकर वह कार्य {शबल ब्रहम} को लाँघकर उस कार्य से परे जो उसका अध्यक्ष पर ब्रह्म है, उसके साथ ऐश्वर्य को भोगता है। इसको क्रम मुक्ति कहते हैं।

असम्प्रज्ञात अथवा निर्बीज समाधि– परवैराग्य द्वारा विवेकख्याति रुप सात्विक, वृत्ति के विरुद्ध हो जाने पर दृष्टा की शुद्ध चेतन परमात्म स्वरूप में अवस्थिति होती है। यह असम्प्रज्ञात अथवा निर्बीज समाधि कहलाती है। इस समय चित्त में कोई वृत्ति नहीं रहती है, किन्तु वृत्तियों को हटाने वाला निरोध का परिणाम रहता है। आरम्भ में असम्प्रज्ञात समाधि क्षणिक (बहुत कम समय वाली) होती है, किन्तु ज्यों–ज्यों, धीरे–धीरे निरोध के संस्कार व्युत्थान के संस्कारों को नष्ट करते जाते हैं, त्यों–त्यों अधिक समय तक रहने वाली होती जाती है और इसकी अवस्था परिपक्व होती जाती है। अन्त में जब निरोध के संस्कार व्युत्थान के सारे संस्कार नष्ट कर देते हैं, तब वे स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार (जस्ता) सीसा सुवर्ण के मल को जलाकर स्वयं शुद्ध हो जाता है, तब शरीर छोड़ने पर चित्त के गुण अपने–अपने कारण में लीन हो जाते हैं और दृष्टा शुद्ध चेतन परमात्मा स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। इस कैवल्य को **सद्योमुक्ति** कहते हैं।

कोई–कोई योगी समाधि की मनोरंजक, आनन्द और शान्त अवस्थाओं को ही, आत्मावस्थिति समझकर इन्हीं में मग्न रह जाते हैं और उनमें सन्तुष्ट होकर आगे बढ़ने का यत्न नहीं करते। शरीरान्त होने पर ये विदेह योगी अपने संस्कार–मात्र के उपयोग वाले चित्र से कैवल्य–पद के समान एक लम्बे समयतक आनन्द और ऐश्वर्य को भोगते हैं। इसी प्रकार प्रकृतिलय अपने अधिकार के सहित चित्त के साथ शरीरत्याग के पश्चात् विदेहों से भी अधिक लम्बे समय तक अस्मिता–प्रकृति में कैवल्य–पद के समान आनन्द अनुभव करते हैं। किन्तु यह वास्तविक स्वरुपावस्थिति (मुक्ति) नहीं है। जैसा कि सांख्य दर्शन में **'ना नन्दाभिव्यक्ति भुक्तिर्निर्धर्मत्वात्।'** (सा.द. 5/74) पहिले ही लिखा जा चुका है। पातंजल योग प्रदीप पृ. 201।।

इस प्रकार मुक्ति का वर्णन देखते हुए, यही कहा जा सकता है कि समाधि अवस्था योगी को तभी प्राप्त होती है, जब वह उसके योग्य स्वयं को बना लेता है, और आत्मसाक्षात्कार से जो जहाँ तक आगे बढ़ता है, उसकी मुक्ति

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

समाधि अवस्था योगी को तभी प्राप्त होती है, जब वह उसके योग्य स्वयं को बना लेता है, और आत्मसाक्षात्कार से जो जहाँ तक आगे बढ़ता है, उसकी मुक्ति उतनी ही दीर्घस्थायी होती है। जिस प्रकार सूक्ष्म सूई के छिद्र में, सूक्ष्म सूत्र ही प्रवेश कर सकता है, उसी प्रकार समाधि और मुक्ति की अवस्था है।

पाखण्ड और अन्धविश्वास की शास्त्री अवधारणाओं का उन्मूलन

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

गतांक से आगे...

ज्योतिष और अन्धविश्वास

ज्योतिषशास्त्र में अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, ग्रह, नक्षत्र आदि विद्याओं का ग्रहण होता है। इससे विभिन्न ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों आदि की पृथ्वी से निश्चित दूरी, गति, स्थिति आदि का ज्ञान होता है। इसके साथ ही अन्य लौकिक व्यवहार भी सिद्ध होते हैं। इन विद्याओं एवं इन पर आधारित **नक्षत्र विद्या के विकास द्वारा ईसा से 800 वर्ष पहले तक प्राचीन भारतवर्ष संसार भर में प्रसिद्ध रहा। महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी** ने अपने **'गणित इतिहास'** ग्रन्थ में लिखा है कि –

"हिन्दुस्तान में जब से ग्रीक लोग आए तभी से यहाँ फलित ज्योतिष का प्रचार फैला। **बृहज्जातक** और नीलकण्ठी देखो–फलित के प्रभाव से हिन्दुस्तान ऐसा दब गया कि जो आज से फलित की ओर पीठ देकर गणित की ओर देखने लगे तो शायद हज़ारों वर्षों में यूरोप की बराबरी में आवे। यह काल की महिमा है कि इस देश के पण्डित धूर में मिले जाते हैं तो भी दिन रात घमण्ड के नशे में चूर हैं जैसे यहाँ स्त्रियों के बीच यन्त्र मन्त्र का प्रभाव है, उससे सौ गुना पुरुषों में फलित ज्योतिष का प्रभाव है। जिस गणित के आधार से फलित जी रहा है उसे लोग दिनों दिन भूलते जा रहे हैं। फलित को **कृत्या (राक्षसी)** समझना चाहिए। यह यूरोप में क्यार्डन केप्लर आदि के गले में लटकती थी।"

द्विवेदी जी ने अपनी दूसरी पुस्तक **'गणकतरंगिणी'** के पृष्ठ 118 में लिखा है कि–

"काशी स्थित औदीच्य ब्राह्मण **श्री दुर्गाशंकर पाठक** अपने समय **(1787 ई.) में जगद्गुरु** कहे जाते थे। वे ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, तन्त्र आदि अनेक विषयों के उच्चकोटि के विद्वान् थे। उनके शिष्य श्री लज्जाशंकर शर्मा काशी के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में गणित– ज्योतिष के प्रधानाध्यापक थे और उन्हीं के शिष्य श्री हीरानन्द चतुर्वेदी वहीं काव्य–साहित्य के प्रधानाध्यापक थे। **लाहौर नरेश श्री रणजीत सिंह** के निधन के बाद **खड्ग सिंह** उन्हीं के मुहूर्त से सिंहासन पर बैठे और उसके बाद उन्होंने पाठक जी से **नौनिहाल सिंह** का **'जन्म पत्र'** बनवाया। जो नानाप्रकार के विचित्र चित्रों से सुशोभित एवं अनेक विशेषताओं के कारण बहुविस्तृत था। उसे देख हर्षित होकर लाहौर नरेश ने **एक लाख मुद्रा** के लगभग धन दिया। नौनिहाल सिंह की अकस्मात् मृत्यु हो गयी पर जन्म कुण्डली में इसकी कोई सूचना नहीं थी। इससे पाठक का महान् अनादर हुआ। जन्मपत्र में लिखी हुई मिथ्या बातों से लाहौर के लोग इतने क्रुद्ध हो गए कि पाठक को मृत्यु भय उपस्थित हो गया। परन्तु वहाँ के कोटाधीश (कोतवाल) **लहनासिंह** ने बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार काशी में उन्हें सुरक्षित पहुँचा दिया। 'काशी के **छन्नूलाल वकील** द्वारा वह जन्म पत्र पोर्टर साहब ने प्राप्त किया और उनकी पत्नी उसे लेकर अपने देश चली गयी।"

यह है आज से **224 वर्ष पहले** की एक लाख रुपए से अधिक दक्षिणावाली **जन्म– कुण्डली** के फलादेश की स्थिति। जिसका फल वेदवेदांग पारंगत विद्यासागर जगद्गुरु **श्री दुर्गाशंकर पाठक** ने लिखा था।

श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत–

हमारे देश के महान् ज्योतिर्विद् श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित सायनवादी थे। उनसे एक विद्वान् ने कहा कि हम आपके सायनवाद को तब शुद्ध मानेंगे जब आप उनके द्वारा जन्म कुण्डली का सत्य फलादेश सुना दें। दीक्षित जी ने बताया कि यह काम तो सायन या निरयण किसी भी मान से साध्य नहीं है। ज्योतिषशास्त्र केवल कुण्डली का फल कहने के लिए नहीं बना है।

फलित ज्योतिष की असत्यता फलित–

ज्योतिष के ग्रन्थ और 18 पुराण कलियुग को अशुभ और पापमय मानते हैं परन्तु वेदानुयायी साहित्य में राजा ही युग है और युगों का शुभत्व तथा अशुभत्व राजा एवं प्रजा के आचार और गुणों पर आश्रित है। **'संवत्सर'** जगत् के आत्मस्वरूप सूर्य से उत्पन्न हुआ है अतः वेद में कोई वर्ष अशुभ नहीं है। **'ऋतुएँ'** विष्णुरूपी संवत्सर की अंग हैं, गुणवती हैं, सुन्दर हैं, मनोहारिणी हैं, इसलिए कभी अशुभ हो नहीं सकतीं। प्रकाश और अन्धकार दोनों ही गुणों के धाम हैं, हितकारी हैं, प्रभु ने सोचकर बनाए हैं, इसलिए दोनों अयन (यान) शुभ हैं, **दोनों पक्ष** शुभ हैं, सभी मास शुभ हैं, सभी तिथियाँ शुभ हैं और अहोरात्र के 30 विभाग अर्थात् **सारे मुहूर्त शुभ** हैं। बड़े ही आनन्द का विषय है कि वैदिक साहित्य में इन सबों के नाम चुन–चुनकर रखे गए हैं, जिन्हें पढ़ सुनकर चित्त गदगद हो जाता है।

यो ह वा मासानामर्धमासानां दिवसानां मुहूर्तानां
नामधेयानि वेद नैतेष्वार्तिमृच्छति य एवं वेद।
यो ह वा अहोरात्राणां नामधेयानि वेद संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति। नाहोरात्रेष्वार्तिमार्च्छति य एवं वेद।।
जनको ह वैदेहोऽहोरात्रैः समाजगाम। तं होचुर्यो वा अस्मान् वेद विजहत्पाप्मानमेति अभिस्वर्गं लोकं जयति।।
– (तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/10/1–9)

वेद में **सब नक्षत्र शुभ** हैं और इन्हें देवगृह तथा तारक आदि कहा गया है। एक भी नक्षत्र का नाम अशुभ नहीं है। जिन्होंने ये नाम रखे उनको सर्वत्र शुभ ही दिखाई दे रहा था, परन्तु वर्तमान ज्योतिष सभी नक्षत्रों को शुभ नहीं मानता। हरि का नक्षत्र श्रवण, गुरु का नक्षत्र पुष्य, अदिति का नक्षत्र पुनर्वसु, मरुत् का नक्षत्र स्वाती और पूषा का नक्षत्र रेवती भी कुछ ही कर्मों में गृहीत है। दक्षिणा लेकर अशुभों के झुण्ड में से शुभ नक्षत्र को बड़े परिश्रम से ढूँढ़ना पड़ता है पुनरपि ज्योतिष ग्रन्थकारों ने लिख दिया है कि सर्वथा निर्दोष मुहूर्त तो एक सहस्र वर्षों में भी नहीं मिलेगा। आप जितने भी कर्म कर रहे हैं, कम से कम दस दोष सबके मुहूर्तों में हैं। **वर्तमान ज्योतिष का आधार विदेशी राशि और वार है।** यह होराशास्त्र कहा जाता है, किन्तु संस्कृत के कोषों में होरा शब्द कहीं नहीं है। इसका सम्बन्ध Hour से है। आज का होराशास्त्र 12 राशियों और 7 वारों पर आधारित है जबकि वैदिक ज्योतिष का आधार नक्षत्र है। वेद ही नहीं, हमारे अन्य **प्राचीन ग्रन्थों** में भी **राशि** और **वार** का कहीं **उल्लेख नहीं** है। राशियों की मेष, वृष आदि आकृतियाँ आकाश में कहीं दिखाई नहीं देतीं और वारों का आकाश से तथा रवि आदि सात ग्रहों से कोई नाता नहीं है। न रविवार गरम होता है न सोमवार ठण्डा होता है और न सिंह राशिवाले वीर और हिंसक होते हैं न कन्या राशिवाले निर्बल व भीरू होते हैं। होराशास्त्र में कल्पना का एकछत्र राज्य है, किन्तु वैदिक ज्योतिष की उक्तियाँ उन ऋषियों की हैं जो सदा आकाश का निरीक्षण किया करते थे और जिनके कालमानों का प्रत्येक नाम आकाश से सम्बन्धित है। वेदों में 12 मासों का, अधिक मास का, मासों के 48 नामों का, वृत्त के 360 अंशों का, नक्षत्र प्रजापति का, नक्षत्रों का और तिथ्यादिकों के स्वरूप का सत्य एवं आलंकारिक विशद वर्णन है, परन्तु राशि और वारों का वर्णन नहीं है क्योंकि वे काल्पनिक हैं। हमारे पूर्वजों ने परकीय ज्ञान की कभी अवहेलना नहीं की परन्तु दुर्भाग्य से मध्यकालिक पण्डितों ने विदेशियों का अवैदिक और अवैज्ञानिक, अज्ञानमूलक विचार ले लिया। भारत में आने के बाद राशियों और वारों पर आधारित होराशास्त्र कल्पना के विशाल जाल में फँसकर और अधिक विकृत हो गया है, इसमें कई सहस्र दोष हैं। उनमें से कुछ प्रश्न उपस्थित किए जाते हैं–

1. सात ग्रह बारह राशियों के स्वामी माने गए हैं किन्तु बाद में सूर्य–चन्द्र की दो निराकार कक्षाओं के दो निराकार संपात भी **राहु–केतु** नामक दो **ग्रह** मान लिए गए। उनके भी लम्बे– लम्बे फल लिखे जाने लगे और फलादेश में उनका महत्त्व सूर्य–चन्द्र से भी अधिक हो गया। प्रश्न यह है कि जिन वराहमिहिर आदि आचार्यों ने इन्हें ग्रह ही नहीं माना फिर उनके फल सत्य कैसे हो सकते हैं ?

2. आकाश में सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त अन्य ग्रह भी हैं उनकी भी कक्षाएँ हैं और उनके भी पचासों निराकार संपात हैं। यदि राहु–केतु का प्रभाव पड़ता है तो उनका भी अवश्य पड़ता होगा, किन्तु फलित ज्योतिषी उनका गणित नहीं करते तो फलादेश सत्य कैसे होंगे ?

3. सौरमण्डल के सबसे बड़े और तेजस्वी ग्रह सूर्य का दशावर्ष सबसे कम केवल 6 वर्ष परन्तु सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले और उससे बहुत छोटे चन्द्रमा के दशावर्ष सूर्य के दशावर्ष से कहीं ज्यादा 10 वर्ष हैं, तो क्या

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

सफल जीवन

● भद्रसेन

{आचार्य भद्रसेन द्वारा लिखित यह लेख एक ट्रैक्ट के रूप में 16 पृष्ठों में छापा था। वार्तालाप शैली में लिखित यह लेख दो अंकों में पाठकों के लिए प्रस्तुत है–सम्पादक}

एक दिन कुछ मित्र बैठे बातें कर रहे थे, बातों–बातों में. अजय ने अपने साथियों से कहा– "दोस्तो ! कल घर पर मेरे जन्म दिन का आयोजन है। अतः आप सब अवश्य ही आएँ।"

अभय – अजय ! इस अवसर पर कौन आ रहा है?

अजय – मेरे पिता जी के एक मित्र आ रहे हैं।

विजय – ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अनोखा ही होगा, अतः साथियो ! अच्छा रहेगा, कि कल अपने साथी की शान बढ़ाई जाए और अनोखापन भी देखा जाए।

अपने साथी का अनुरोध अनुभव करके अजय के अनेक मित्र आयोजन पर यथासमय उपस्थित हुए। जब कार्यक्रम की सारी प्रक्रिया पूर्ण हो गई और सारे धूप में आराम से बैठे हुए थे तब अजय के पिता विवेकशील जी अपने मित्र मानवेन्द्र जी को साथ लेकर वहीं आ गए।

सबको अपने मित्र का विस्तृत परिचय दिया और फिर अजय को कहा– "अब तुम अपने साथियों का परिचय कराओ।" परिचय पूर्ण होने पर मानवेन्द्र जी ने कहा– "देखो ! भोजन में अभी कुछ समय शेष है, आओ ! अपने परिचय में और अधिक अपनापन लाएँ।"

सोमेश–मानवेन्द्र जी ! यह ठीक है कि आप एक प्रसिद्ध वकील हैं फिर भी आपने जिस सुव्यवस्थित ढंग से आयोजन को सम्पन्न कराया है, इससे लगता है कि आपका इस क्षेत्र का भी अच्छा स्वाध्याय है अतः आप से कुछ स्पष्ट करना चाहते हैं और प्रथम बात यह है कि आपकी इस ओर प्रवृत्ति कैसे हुई?

मानवेन्द्र – सोमेश ! मुझे इस चर्चा में भाग लेकर खुशी होगी। जैसे वकालत में आपस की चर्चा से अनेक बार अनेक बातें स्पष्ट होती हैं और तभी तो कहा है **'वादे–वादे जायते तत्त्वबोधः'** ऐसे ही यहाँ भी आशा करनी चाहिए। अतः मैं सभी बन्धुओं से साग्रह अनुरोध करता हूँ, कि वे खुल कर बिना संकोच इस चर्चा में भाग लें। देखिए ! जैसे आज शारीरिक क्षमता, शैक्षणिक योग्यता, आर्थिक सम्पन्नता, राजनैतिक सूझबूझ आवश्यक हैं, अन्यथा जीवन अधूरा–अधूरा ही लगता है क्योंकि सामान्य परिचय के बिना जैसे हर क्षेत्र में व्यक्ति अधूरा ही रहता है वैसे ही धार्मिक समझ का भी सामान्य परिचय अवश्य ही होना चाहिए नहीं तो शिक्षित, प्रतिष्ठित होने पर भी व्यक्ति का **'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः'** अर्थात् भेड़चाल वाला ही हाल हो जाता है।

भेड़चाल शब्द को सुन कर विवेक जी ने कहा –मित्र मानवेन्द्र! आपने जिस प्रकार से भेड़चाल शब्द का उच्चारण किया है, लगता है इसके पीछे कोई विशेष कहानी है, अन्यथा प्रारम्भ में आप भी इस क्षेत्र में हमारी तरह ही अपने आप में मस्त थे।

मानवेन्द्र – विवेक ! आपने व्यंग्य को सही रूप में पकड़ा है। इसके पीछे एक दिलचस्प घटनाचक्र है। मेरा एक स्कूल का मित्र डाक्टर बन कर अफ्रीका चला गया था। वहाँ उसने अच्छी सफलता प्राप्त की। काफी वर्षों पश्चात् जब वह यहाँ लौटा, तो कुछ दिन वह मेरे पास भी रहा। बालपन के सखा होने के कारण उससे अनेक विषयों पर खुल कर बातें हुईं। मैंने एक दिन उसे कहा –

प्रेम! कोई ऐसी घटना बता, जिसने तुझे असमंजस में डाल दिया हो ?

तब प्रेम ने बताया, जब मैं अफ्रीका में गया, तो वहाँ शिक्षा का बहुत कम प्रसार था। अतः हमारी तरह कारोबार के लिए वहाँ आए विदेशियों के साथ ही हमारा उठना–बैठना अधिक होता था। एक दिन मैं अंग्रेज़ मित्रों के साथ बैठा था, बातों–बातों में एक ने पूछा, भारतीय कितने ईश्वरों को मानते हैं? तभी एक अन्य ने कहा– मेरा एक मित्र भारत में काफी समय रह कर आया है अतः भारत दर्शन के अनुभव बताते हुए कह रहा था, कि भारत के लोग नाग, वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य, किसी ठोस वस्तु आदि न जाने कितनी तरह के भगवानों की पूजा करते हैं और उनकी बड़ी विचित्र–विचित्र शक्लें एवं नाम हैं। यह सब सुनकर बड़े संकोच के साथ आगे की बातचीत में मैंने भाग लिया। चाहे डी.ए.वी. स्कूल में पढ़ते हुए वहाँ धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त की थी पर उन दिनों हमारा विचार रहता था कि यह हमारे किस काम आएगी। इसलिए इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया। एक बार भारतीय संस्कृति की चर्चा में मैंने उस के साथ वैज्ञानिक शब्द का प्रयोग किया, तभी एक अमेरिकन ने पूछा, भारत में विवाह आदि में जो धार्मिक प्रक्रिया होती है, उनका आपस में कोई ताल–मेल है ? पर मैं इसका कोई उत्तर न दे सका क्योंकि मैंने तो यही सोचा था कि मेरा तो केवल चिकित्सा विज्ञान से ही सम्बन्ध है। अतः और बातों की ओर ध्यान देने की क्या ज़रूरत है और वह भी धार्मिक बातों पर! ये सब तो केवल पुरोहितों की ही बातें हैं।

मित्रों के साथ हुई चर्चा से मैंने यह अनुभव किया कि जब हमारा जीवन–शरीर, शिक्षा, पैसा, धर्म, समाज से जुड़ा हुआ है, तो इन बातों का सामान्य परिचय अवश्य ही होना चाहिए क्योंकि परिचय से ही किसी की उपयोगिता और जचाव सामने आ सकता है, अन्यथा इन बातों से कोरा रहने का अभिप्राय यही होगा कि इनका हमारे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि इनका सम्बन्ध नहीं है, तो फिर हम इनकी यदा–कदा चर्चा क्यों करते हैं?

अपने मित्र प्रेम की बात सुनकर मेरे मन में विचार आया कि वही वस्तु अपनी होती है, जिस का हमें परिचय होता है। अपनी रोजमर्रा की वस्तुओं की तरह अपनी संस्कृति, सभ्यता, विद्या तभी अपनी कही जा सकती है जब हमें उस की कुछ जानकारी हो, अन्यथा अपरिचित तो दूसरों की ही कही जा सकती है। इसके पश्चात् ही मैंने भी अपने धर्म, अपनी परम्परा आदि का अध्ययन आरम्भ किया। इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि इस परिचय से केवल अपनेपन के ज्ञान का संतोष ही नहीं हुआ, अपितु उससे कार्यक्रम में आनन्द, संतुष्टि भी होने लगी और तब छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि की यह बात अनुभव में आने लगी, कि **यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति** 1, 1, 10 अर्थात् व्यक्ति जिस भी कार्य को समझ, विश्वास और अपनेपन से करता है, उसी में ही अधिक आनन्द आता है, तथा वह पूरी तरह से आश्वस्त भी होता है।

यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति सब कुछ नहीं जान सकता इसीलिए ही कहते हैं, कि ***'एक्के साधे सब सधे, सब साधे सब जाए'।*** पर अपने व्यवहार में आने वाली वस्तुओं का सामान्य परिचय तो हर एक सरलता से प्राप्त कर ही सकता है।

विवेक – मित्र मानवेन्द्र ! आप ने बहुत ही अच्छा निर्णय लिया। आज के व्यक्ति का जीवन चाहे कितना व्यस्त क्यों न हो ? पर अपनेपन के कारण अपनी चीज़ों के सामान्य परिचय के लिए कुछ समय तो अवश्य ही निकाला जा सकता है। आन्तरिक रहस्यों पर तो पूरी तरह से उस–उस क्षेत्र के विशेषज्ञों का ही विशेष अधिकार हो सकता है पर सामान्य बातों से तो प्रत्येक परिचित हो सकता है और अधिकतर हमारा उतने से ही पर्याप्त कार्य चल जाता है। आजकल अन्य क्षेत्रों की तरह धर्म में भी व्यापार भावना छा रही है और इससे मूलभावना चारों ओर की घास से दब जाती है अतः मूलभावना को बचाने पर ही धर्म का कर्मकाण्ड वाला रूप सब की समझ में आ सकता है। जैसे कि भक्ति के लिए प्रत्येक अपनी पसन्द का गीत सरलता से अपना सकता है और तभी कोई भक्त बनकर भगवान से अपना निकट सम्बन्ध अनुभव कर सकता है।

दिनेन्द्र – मानवेन्द्र जी ! आपकी इस चर्चा से मेरे प्रश्न का स्वतः ही उत्तर सामने आ जाता है। हाँ, इस चर्चा में आपने जीवन की सफलता के लिए सामान्य परिचय की ओर विशेष संकेत किया है अतः जो कुछ आपने समझा है, वह हमें भी बता दें तो हमारे लिए बात और भी अधिक सरल स्पष्ट हो जाएगी।

मानवेन्द्र – इस दृष्टि से हम अपनी बात **जीवन** शब्द से ही शुरु करते हैं। देखो! जीवन शब्द का सीधा–सा अर्थ है जीना और हमारा जीवन प्रथम साँस से अन्तिम श्वास तक के रूप में होता है अतः इसके लिए जो कुछ भी आवश्यक है अर्थात् जिन–जिन के बिना जीवन नहीं चलता, वही हमारे लिए ज्ञेय हैं। यह सब उसी क्रम से अपेक्षित है, जिस क्रम से जितना–जितना जीवन के लिए ज़रूरी है इसीलिए जीवन शब्द ही हर निर्णय की कसौटी है। चाहे यह शब्द कितना भी छोटा क्यों न हो, पर अपने आप सब कुछ स्वतः स्पष्ट कर देता है। हाँ, इसके विस्तार के लिए **'जीवन दर्शन'** पढ़िए।

सामान्य परिचय का पहला पग है–

शारीरिक क्षमता

स्वास्थ्य पर ही हमारा सारा अध्ययन, अर्जन, सर्वविध विकास, यश,

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आध्यात्मिक नैतिकता

● डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार

{दो अंकों में समाप्य}

(क) जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि

जीवन को प्रायः व्यावहारिक जगत् के प्रति याजुष दृष्टि से देखा जाता है। याजुष श्रुतियों में निहित जीवन भौतिक जगत् से प्रारम्भ होकर भौतिक जगत् में ही समाप्त नहीं हो जाता अपितु इसका विस्तार आध्यात्मिक जगत् तक है। यहाँ जीवन भौतिक जगत् की सफलता के लिए जितना प्रतिबद्ध, जागरूक और यत्नशील है उतना ही आध्यात्मिक लक्ष्य के साफल्य हेतु भी है। जीवन को भौतिक और आध्यात्मिक वर्गों में बाँटने का यजुर्वेद का कोई अभिप्राय नहीं है, क्योंकि जीवन के दो प्रवाह नहीं हैं। एक ही प्रवाह आगे तक जा रहा है। इस प्रवाह में वयः के विशेष–विशेष पड़ावों पर वृत्तिरूप अन्य अनेक लघु धाराएँ आकर एकरूप हो जाती हैं, अन्ततः प्रवाह एक ही है। इसी प्रवाह के कुछ भाग को हम भौतिक जीवन, सामाजिक जीवन या व्यावहारिक जीवन कह देते हैं तथा अवशिष्ट भाग को आध्यात्मिक या पारलौकिक जीवन। इस जीवनधारा में विलीन होनेवाली तदात्म होनेवाली प्रत्येक लघुधारा इसके प्रवाह को प्रभावित करती है, कई बार लघुधाराएँ जीवन की मुख्यधारा को अधिक प्रभावी बनाती हैं तो कई बार ये आनुषङ्गिक धाराएँ मुख्य प्रवाह में उफान उत्पन्न करके उसके मर्यादारूपी तटों को नष्ट–भ्रष्ट कर देती हैं। उनसे समस्त लघुधाराएँ सामाजिक या व्यावहारिक जीवन में आकर इस जीवनधारा में मिलती हैं। अतः व्यावहारिक जीवन का भी उतना ही मूल्य है जितना आध्यात्मिक जीवन का।

भारतीय जीवन–दर्शन का गौरवशाली पक्ष यह है कि वह इस जीवन को प्रथम और अन्तिम नहीं मानता। दूसरे शब्दों में, हमारा यह जीवन न जन्म से प्रारम्भ होता है और न मृत्यु पर समाप्त होता है, क्योंकि न यह यहाँ से प्रारम्भ है और न यहाँ इसका अन्त होगा। यह तो शाश्वत् जीवन–प्रवाह की एककालिक अभिव्यक्ति मात्र है। यह जीवन पूर्व जीवन का परिणाम भी है और आगामी जीवन की प्रस्तावना भी। इसकी उपमा उस खेत के सदृश है जिसमें से पूर्व वपित बीज से तैयार फसल को काटा भी जा रहा है और आगामी समय के लिए बीजवपन भी किया जा रहा है। इन अर्थों में अपना आगामी जीवन स्वयं निर्धारित करने का मनुष्य में पूर्ण स्वातन्त्र्य है। व्यावहारिक (भौतिक) और आध्यात्मिक नैतिकता वर्तमान जीवन में भावी जीवन की रूपरेखा तैयार करने के साधन हैं। मनुष्य की साधना उच्च पर समाप्त नहीं होती, उच्च उच्चतर का साधन है और उच्चतर उच्चतम का। मानव जीवन का उच्च और उच्चतर मूल्य यदि समृद्ध, सुखमय, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की प्राप्ति का है तो उच्चतम मूल्य एकान्तिक सुख अर्थात् कैवल्य की प्राप्ति का। उच्च और उच्चतर मूल्य की प्राप्ति यदि हम भौतिक नैतिकता के द्वारा कर सकते हैं तो उच्चतम मूल्य की प्राप्ति का साधन आध्यात्मिक नैतिकता है। पुरुषार्थचतुष्टय में अर्थ तथा काम यदि पारिवारिक और सामाजिक मूल्य हैं तो धर्म तथा मोक्ष आध्यात्मिक। **सतत स्मरणीय है कि आध्यात्मिक मूल्यों ने अभितः सामाजिक मूल्यों को घेर कर मर्यादित किया हुआ है।**

सामाजिक मूल्यों (काम+अर्थ) की प्राप्ति के लिए विकल चित्त से यदि आध्यात्मिक मूल्य ओझल हो जाएँ तो सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए अपनाई गई कार्ययोजना और कार्यशैली नितान्त अमर्यादित होकर पारिवारिक और सामाजिक उत्पीडन के कभी न समाप्त होनेवाले दुःखद अध्याय को प्रारम्भ कर देती है। इसीलिए भारतीय जीवन–दर्शन में आध्यात्मिक मूल्य सर्वदा सामाजिक मूल्यों पर अहर्निश कठोर दृष्टिपात करते हैं। यहाँ आध्यात्मिक मूल्यों के प्रकाश में सामाजिक मूल्यों को देखने की प्रवृत्ति का यही कारण है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सामाजिक मूल्य नितान्त हेय हैं। सामाजिकता को विकृत होने से बचाने के लिए उस पर आध्यात्मिकता का अनुशासन और वर्चस्व है।

सामाजिक ध्येय का संरक्षण यदि आध्यात्मिक मनोवृत्ति द्वारा न किया जाए तो सामाजिक ध्येय का अनेक असंस्कारी मनोवृत्तियों द्वारा बलात् अपहरण कर लिया जाएगा। वर्तमान समय में अनेक पवित्र सामाजिक ध्येयों पर असंस्कारी मनोवृत्तियों का साम्राज्य इसका अच्छा उदाहरण है। सामाजिक ध्येय आध्यात्मिक संस्कारों के अभाव में कलुषित स्वार्थों की सम्पूर्ति में कवच के रूप में प्रयुक्त होने लगते हैं, जबकि आध्यात्मिक भावनाएँ सामाजिक उद्देश्यों से स्वार्थ और एषणाओं को बहिष्कृत कर उसे सम्बल प्रदान करती हैं।

आध्यात्मिक मनोवृत्ति पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्र में मिल रही सफलता, असफलता और मानापमान आदि में भी मानव का संरक्षण करती है। हमारा दैनन्दिन व्यवहार अनेक विषमताओं से भरा है। हमारी क्रियाओं और वक्तव्यों पर परिवार और समाज की ओर से विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं – कुछ समर्थन में होती हैं तो कुछ विरोध में। विशुद्ध भावनाओं को लेकर समाज के हित साधन में संलग्न होने पर भी विरोध, अपमान और असफलताओं से सम्मुख्य होता है, जिससे मनुष्य बहुधा टूटकर हित साधन से विरक्त हो जाता है। वस्तुतः यह मार्ग अनेक वर्जनाओं से भरा हुआ है। ऐसे में अध्यात्मवृत्ति सांसारिक घटनाओं और प्रतिक्रियाओं के प्रति चित्त में समभाव का संचार कर मनुष्य को सम्बल प्रदान करती है। ऐसा मनुष्य रचनात्मक समाज के सर्जन में असामाजिक और स्वार्थी तत्त्वों द्वारा किए जा रहे सतत विरोध के उपरान्त समभाव से स्वकार्य में संलग्न रहता है। समाज हितार्थ भगवान् शङ्कर का विषपान करना इस वक्तव्य की व्याख्या करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय जीवन–दर्शन में भौतिक जीवन के साथ आध्यात्मिक जीवन का प्रस्ताव उन्नत समाज की प्राप्ति के लिए उन्नत मनोवृत्ति का उद्भावक और संरक्षक है। आध्यात्मिक जीवनमूल्यों से असम्बद्ध सामाजिक जीवन अन्ततः भार प्रतीत होने लगता है। शक्ति स्रोत के सतत क्षीण होने से जीवन निस्सार और अनुपयोगी–सा लगता है, जबकि आध्यात्मिकजीवन के संयुक्त होने पर मनुष्य शारीरिक शक्ति क्षीण होने के साथ ही नई भूमिका में चला जाता है, जीवन के साथ–साथ चल रहे दूसरे लक्ष्य (कैवल्य) की सिद्धि में संलग्न हो जाता है, जिससे जीवन अन्तिम श्वास तक उपयोगी और मूल्यवान् अनुभव होने लगता है। अतः भारतीय जीवन–दर्शन में सामाजिक जीवन मूल्यवान् अनुभव होते हुए भी आध्यात्मिक जीवन का अङ्ग है। हमारा यह जीवन निरपेक्ष नहीं है, सापेक्ष है। इसके गर्भ में अगला जीवन भी पल रहा है। छान्दोग्योपनिषदीय इन्द्र, विरेचन तथा प्रजापति का संवाद इस सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण व्याख्यान है। अतः हमें शरीर को साधन मानकर अपने जीवन का कार्यक्रम बनाना चाहिए, जबकि हम इस जीवन को आदि और इसी को अन्त मानकर अपने जीवन का कार्यक्रम निश्चित करते हैं। यही आध्यात्मिक नैतिकता है और यही जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि।

भारतीय जीवन-दर्शन का गौरवशाली पक्ष यह है कि वह इस जीवन को प्रथम और अन्तिम नहीं मानता। दूसरे शब्दों में, हमारा यह जीवन न जन्म से प्रारम्भ होता है और न मृत्यु पर समाप्त होता है, क्योंकि न यह यहाँ से प्रारम्भ है और न यहाँ इसका अन्त होगा। यह तो शाश्वत् जीवन-प्रवाह की एककालिक अभिव्यक्ति मात्र है। यह जीवन पूर्व जीवन का परिणाम भी है और आगामी जीवन की प्रस्तावना भी। इसकी उपमा उस खेत के सदृश है जिसमें से पूर्व वपित बीज से तैयार फसल को काटा भी जा रहा है और आगामी समय के लिए बीजवपन भी किया जा रहा है।

(ख) आध्यात्मिक नैतिकता का स्वरूप

गत पंक्तियों में हमने देखा कि जीवन में घट रही घटनाओं और किए जा रहे कार्यों का आध्यात्मिक प्रसङ्ग में देखने की प्रवृत्ति मनुष्य को महान् सम्बल प्रदान करती है। इन पंक्तियों में हम विभिन्न घटनाओं और क्रियाओं में की जानेवाली आध्यात्मिक भावना के स्वरूप का सन्दर्शन करेंगे।

(ग) आत्मा और शरीर के सम्बन्ध का उपदेश

हमारा सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध अपने शरीर से है। **सामाजिक शब्दकोश में 'मैं' का तात्पर्य मैं (आत्मा) और मेरा शरीर दोनों है, जबकि आध्यात्मिक शब्दकोश में 'मैं' केवल आत्मा का बोध कराता है तथा शरीर 'मेरा' के अर्थ क्षेत्र में पहुँच जाता है।** आध्यात्मिक अर्थों में शरीर वैसे ही 'मेरा' है जैसे घर 'मेरा' है, कार 'मेरी' है या धन 'मेरा' है। घर, कार, और धन 'मैं' नहीं अपितु 'मेरे' हैं, ऐसे ही आध्यात्मिक अर्थों में शरीर 'मैं' नहीं, 'मेरा' है। कठोनिषद् के ऋषि ने इस 'मैं' और 'मेरे' का वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण में इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि शरीर आत्मा का साधन है, उपकरण है। उपनिषद् के विचार में शरीर एक रथ है, इन्द्रियाँ उसमें जुते अश्व हैं, ये अश्व संसार के विषयों की ओर दौड़ रहे हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथि है तथा आत्मा

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

पुस्तक-समीक्षा

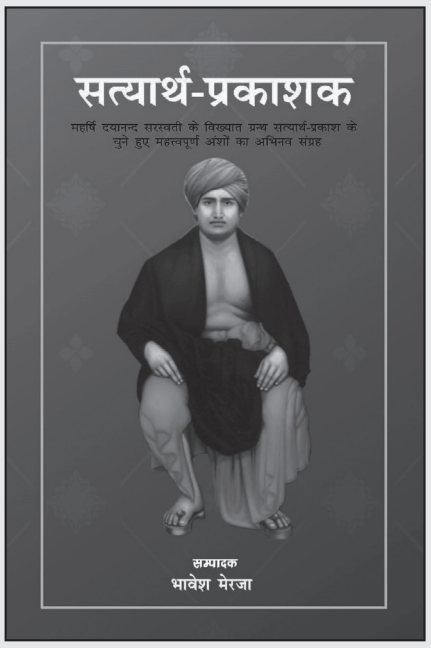

पुस्तक का नाम – सत्यार्थप्रकाशक

सम्पादक – भावेश मेरजा

पता – A–501, नील कण्ठ हाईट्स सेवासी–केमाल रोड, सेवासी, वडोदरा (गुजरात–391101)

प्रकाशक – डीएवी प्रकाशन विभाग, चित्र गुप्त मार्ग, नई दिल्ली

पृष्ठ संख्या – 314

मूल्य – 100 रुपये मात्र

'सत्यार्थ–प्रकाशक' नामक ग्रन्थ का सम्पादन श्री भावेश मेरजा द्वारा किया गया है जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ **'सत्यार्थ प्रकाश'** के चुने हुए समसामयिक महत्त्वपूर्ण अंशों को संगृहीत किया गया है। इसका प्रकाशन डीएवी प्रकाशन विभाग, डीएवी कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली द्वारा किया गया है। 314 पृष्ठों का यह ग्रन्थ साधारण मूल्य मात्र 100 रुपए में उपलब्ध है।

श्री भावेश मेरजा ने इस ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द के अलग–अलग सिद्धांतों को समसामयिक, ससन्दर्भ और सटीक सम्पादन के साथ प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में डीएवी के प्रधान पद्मश्री पूनम सूरी का संदेश महर्षि दयानन्द सरस्वती के सभी सिद्धांतों के समर्थन के साथ पाठकों को यह पुस्तक पढ़ने की सहज, स्वाभाविक प्रेरणा देता है।

सम्पादकीय लेख में महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सम्यक्तया प्रकाश डाला गया है। अनेक प्रकार की नवीन जानकारियों के साथ यह सम्पादकीय पुस्तक को और भी रोचक बना देता है। सत्यार्थ प्रकाश का सामान्य परिचय भी पाठक का ज्ञान–वर्धन करता है।

पुस्तक में इन बीस बिन्दुओं पर विशेष रूप से चर्चा की गई है–

1. मानव–उन्नति का मुख्य साधन – सत्योपदेश, 2. सत्य–असत्य की पाँच परीक्षाएँ, 3. ईश्वर का अस्तित्व और उसका स्वरूप, 4. ईश्वर का सर्वोत्तम नाम – ओम् (ओ३म्), 5. सृष्टि–विज्ञान, 6. ईश्वरीय ज्ञान – वेद, 7. वैदिक शिक्षण व्यवस्था, 8. स्तुति–प्रार्थना–उपासना और पंचमहायज्ञ, 9. मुक्ति और आवागमन, 10. आर्यावर्त और वैदिक धर्म का इतिहास, 11. मूर्त्तिपूजा, 12. ज्योतिष, गरुडपुराण और पोपलीला, 13. ब्रह्मचारियों और संन्यासियों, 14. राजधर्म के मार्गदर्शक सूत्र, 15. गोरक्षा का महत्त्व, 16. खण्डन–मण्डन, 17. सत्यार्थ–विचार–संग्रह, 18. मनुस्मृति का धर्मोपदेश, 19. सच्चे धर्म की खोज, 20. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

उक्त विषयों को पढ़कर मनुष्य असत्य से सत्य, अन्याय से न्याय अधर्म से धर्म, अनीति से नीति तथा अज्ञान से प्रकाश की ओर यात्रा कर सकता है। पुस्तक में महर्षि दयानन्द के विचारों को यथासम्भव उत्कृष्टतया प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

आशा की जा सकती है कि विद्वान सम्पादक कुछ और गंभीर विषयों को लेकर एक अन्य सुन्दर पुस्तकें पाठकों को परोसेंगे।

सम्पादक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

प्रो. (डॉ.) सुधीर कुमार शर्मा
जेएनयू. नई दिल्ली

☞ पृष्ठ 05 का शेष

आध्यात्मिक दर्शन और योग

उतनी ही दीर्घस्थायी होती है। जिस प्रकार सूक्ष्म सूई के छिद्र में, सूक्ष्म सूत्र ही प्रवेश कर सकता है, उसी प्रकार समाधि और मुक्ति की अवस्था है।

तात्पर्यतः अपने चित्त जैसे शीशे पर पड़े संस्कार सांसारिक माया के आवरण को 'प्राणायाम' आदि अर्थात् अष्टांगयोग के साधन से जो जितना ही साफ और स्वच्छ करेगा, वह उतना ही अपने स्वरूप का दर्शन अर्थात् आत्मसाक्षात्कार करने में समर्थ हो जाएगा और जब पूर्ण रूप से **'प्रणव'** के ध्यान से शुद्ध हो जाएगा– तब उसे स्वाभाविक रूप से समाधि अवस्था प्राप्त हो जाएगी।

पुनश्च– ऋषि दयानन्द के शब्दों में मोक्ष में भौतिक शरीर व इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है, वैसे ही अपनी शुद्ध संकल्प की शक्ति से मुक्ति के आनन्द को भोग करता है। मुक्तजीव की मुख्यशक्ति एक प्रकार की होती है परन्तु 24 (चौबीस) प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव के होने से, इससे मुक्ति में भी आनन्द प्राप्ति का भोग करता है। (इससे सिद्ध हो जाता है कि मुक्ति में भी शुद्ध जीव के साधन रहते हैं) उन्होंने लिखा भी है कि –

"जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाला रहता है, परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता और दूसरी बात यह है कि अनन्त आनन्द भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीवों में नहीं, इसलिए अनन्त सुख नहीं भोग सकते जिनके साधन अनित्य हैं उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता।"

मुक्ति एक अवस्था है– जिस प्रकार सुषुप्ति एक अवस्था है और वह कारण शरीर के सम्बन्ध से प्राप्त होता है, उसी प्रकार मुक्ति भी एक अवस्था है जो तुरीय शरीर के सम्बन्ध से प्राप्त होता है। तुरीय शरीर वह है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्द में जीव मग्न रहता है। इस आनन्द में जीव तब तक रहता है, जब तक उसका तुरीय शरीर से अपूर्व चेतन का सम्बन्ध बना रहता है परन्तु जब मुक्त जीव का संकल्प समाप्त हो जाता है तब उसका तुरीय शरीर से सम्बन्ध छूटकर, कारण और सूक्ष्म शरीर से हो जाता है, और इनसे उनका सम्पर्क स्थापित होते ही उस आत्मा को पुनर्जन्म धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, यह ईश्वरीय नियम है।

क्रमशः

☞ पृष्ठ 07 का शेष

आध्यात्मिक नैतिकता

इस रथ पर आरूढ है और वही आत्मा रथी है। जीवन के साथ यह सम्बन्ध स्थापित करना ही जीवन की सम्पूर्णता है। शरीर तथा आत्मा में एतादृश सम्बन्ध की भावना भोग के प्रति जीवन की दृष्टि को बदल देती है। यह भावना समाज में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की जनयित्री है।

शरीर तथा आत्मा के एक–दूसरे से भिन्न होने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि शरीर की उपेक्षा की जाए। संसार का हम उपभोग करें, किन्तु भोग ही न करते रहें। भोग ध्येय नहीं है अपितु ध्येय–साधन है। भोगों के संग्रह में ही जीवन का उपराम न हो जाए, यह इस दृष्टि का लक्ष्य है। शरीर तथा आत्मा एवं जगत् तथा परमात्मा की क्रमशः अनित्यता एवं नित्यता से सम्बद्ध वर्गीकरण का व्यावहारिक रूप से हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? वस्तुतः यदि हम गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि हमारी प्रत्येक समस्या का मूल स्रोत एक ही है कि हम अस्थिर को स्थिर, नाशवान् को अविनाशी या अनित्य को नित्य चाहते हैं। यदि हम समझ जाएँ कि शरीर तथा आत्मा और जगत् तथा परमात्मा भिन्न–भिन्न हैं, दोनों क्रमशः नित्य तथा अनित्यता में बँटे हैं तो जीवन के प्रति हमारी दृष्टि ही बदल जाएगी। हमारे परितः एकत्रित वस्तुओं की सत्ता हमारे लिए इतनी मात्र रह जाएगी जितनी बहते पानी में नदी के उस प्रवाह की होती है जो हमारे सामने से बहकर आगे चला गया है। शरीर में जीना जीना नहीं है, वास्तविक जीवन के लिए हमें पंचकोशों के रूप में शरीर से आगे बढ़कर प्राण में जीना होगा, मन में जीना होगा, विज्ञान में जीना होगा तथा आनन्द में जीना होगा और अन्त में उससे भी आगे आत्मा में, स्वस्वरूप में।

क्रमशः

लेखक की पुस्तक "शुक्ल यजुर्वेद में दार्शनिक तत्त्व" से साभार

☞ पृष्ठ 05 का शेष

पाखण्ड और अन्धविश्वास ...

चन्द्रमा का प्रभाव सूर्य से अधिक हैं ?

4. आकाश में जिस राहु का कोई बिम्ब नहीं है उससे दशावर्ष ग्रहराज सूर्य से 3 गुना 18 वर्ष है, बुध के 17 वर्ष, शुक्र के 20 वर्ष और शनि के 19 वर्ष हैं जबकि ये सूर्य से अति छोटे हैं।

5. आकाश के सबसे तेजस्वी ग्रह सूर्य और चन्द्रमा एक–एक राशियों के स्वामी हैं, परन्तु जिस नन्हें से बुध को अनेक पाश्चात्य ज्योतिषी प्रयास करने पर भी जीवन भर में कभी देख न सके वह बुध ग्रह तथा अन्य ग्रह दो–दो राशियों के स्वामी हैं। इसका कल्पना के अतिरिक्त अन्य कोई हेतु नहीं है।

6. ये राशि स्वामी ग्रहों के जिस कक्षा क्रम के आधार पर निश्चित किए गए हैं उसे विज्ञान ने प्रत्यक्ष विरुद्ध और मिथ्या सिद्ध कर दिया है। अब यह निश्चित हो गया है कि ग्रह पृथ्वी की नहीं, बल्कि सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं और पृथ्वी स्वयं सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। पृथ्वी को अचला मानने पर पचासों प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते। ग्रहों के राशि स्वामित्व का निर्णय जिस कक्षा क्रम द्वारा किया गया है उसमें पृथ्वी और चन्द्र सूर्य के पास हैं तथा बुध और शुक्र दूर हैं किन्तु यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष विरुद्ध और विज्ञान विरुद्ध है।

7. मुख्य प्रश्न यह है कि जातकशास्त्र का मूल लग्न है पर उसके परस्पर विरोधी अनेक मत हैं। जैमिनि, पराशर आदि आचार्य सब लग्नों का मान समान (2 घण्टा) मानते हैं और भावसाधन में केवल 15 अंश जोड़ते हैं, किन्तु आज के लग्नसाधन में सब राशियों के उदयमान भिन्न–भिन्न हैं। भावों का साधन प्रकार दूसरा है और अयनांशों के अनुसार राशियों के उदयमान बदलते रहते हैं। आचार्य वराहमिहिर का मान न 2 घण्टा न विषुवत् रेखावाला है व सारी धरती के लिए एक है उस पर अयनांश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि बच्चा जिस घर में पैदा हुआ वहाँ कितनी स्त्रियाँ थीं ? दीपक, पलंग आदि की स्थिति क्या थी ? द्वार किस दिशा में था ? इन सबों के आधार पर लग्न को बदलने का आदेश है, मुख्य जन्मकाल का कोई महत्त्व नहीं है।

8. फलित ज्योतिषी राशियों के आरम्भ स्थान तो स्थिर मानते हैं पर वह निश्चितरूप से चल हैं। प्राचीन काल में मृगशीर्ष प्रथम नक्षत्र था। वेदों में कृतिका की अधिक चर्चा है, वहाँ से अश्विनी में आया और अब पूर्वभाद्रपदा में जाने की तैयारी में है। हमारे पूर्वज इसमें सदा संशोधन किया करते थे पर आज हम रूढ़िवादी बनकर 22 दिसम्बर को होनेवाली **मकर संक्रान्ति** 24 दिनों बाद 14 जनवरी को मना रहे हैं। अतः निश्चय ही यह सत्य का गला घोटना है।

9. खेद है कि ज्योतिष का प्रत्येक विद्वान् यह जानता है कि भारत के बाहर सर्वत्र सायन गणना प्रचलित है क्योंकि वही प्रत्यक्ष और प्राकृतिक है, हमें भी उसी को ग्रहण करना चाहिए। हम लग्न निकालते समय पहले सूर्य को सायन करते हैं, क्योंकि दूसरा उपाय नहीं है, पुनरपि विद्वत्समाज रूढि के सामने नतमस्तक हो गया है। **महामहोपाध्याय श्री बापूदेवजी शास्त्री** ने दुःखी होकर लिखा है कि यद्यपि सायण गणना ही ठीक है तथापि देश में सर्वत्र निरयण का प्रचार होने से मैं सामान्य जनता की सन्तुष्टि के लिए निरयण पंचांग बना रहा हूँ।

भवति यद्यपिसायणगणनैव मुख्या तथापि भारते सर्वत्र निरयण प्रचारात् सामान्यजन–प्रमोदायेदं तिथिपत्रं निरयणगणनयैव व्यरचयम्।

यहाँ शंकर बालकृष्ण दीक्षित का सायन पंचांग नहीं चला। हाँ, यह सत्य है कि हमारे पूर्वजों ने पंचवर्षीय शाश्वत पंचांग छोड़ा, सुपर्णचिति छोड़ी, मृगशीर्ष से अश्विनी पर आ गए, वशिष्ठ सिद्धान्त को दूरभ्रष्ट कहा, सूर्य सिद्धान्त में बीज संस्कार दिया और उसे भी छोड़ नए ग्रन्थ बनाए। आज वे होते तो सायन पंचांग ही चलता। आज भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें परस्पर विरोधी अनेक पंचांग चलते हैं।

10. हमारा आधुनिक ज्योतिष भाग्य और विधिलेख को अटल मानता है पर हमारे प्राचीन अनेक आचार्य इसके विरोधी हैं। अन्न की वृद्धि हुई है, जल सुलभ हुआ है, अनेक असाध्य रोग सुसाध्य हो गए हैं। गोबर आदि गैसों से भोजन बन रहा है। प्राकृतिक वायु से रहट चल रहे हैं। सूर्य–किरणों से अनेक कार्य हो रहे हैं। दूर–दूर का क्रिकेट मैच टी.वी. पर घर–घर में देखा जा रहा है और बहुत लोगों ने अपने जीवन में परिवार नियोजन को लागू कर दिया है। फिर भी ज्योतिषी उनके जन्म–पत्री और हस्तरेखाओं को देखकर अनेक सन्तानों का उत्पन्न होना बता रहे हैं। जिनकी जन्मपत्री और हस्तरेखाओं में विवाहित पत्नियों और अनेक पुत्रों का योग तथाकथित रूप में लिखा हुआ है ऐसे अनेक स्त्री–पुरुष अविवाहित ही रह जा रहे हैं। अतः इस फलित ज्योतिष का असत्य कथन प्रलाप नहीं तो और क्या है ?

11. आज हिन्दू में ज्योतिषी से **मुहूर्त पूछे बिना** छोटा–बड़ा कोई भी काम करने का साहस नहीं है किन्तु हम देख रहे हैं कि संसार के जो देश सुख, विद्या, धन, विज्ञान आदि विषय में हमसे आगे हैं वे कभी भी मुहूर्त नहीं पूछते। हमारा पड़ोसी **मुसलमान मुहूर्त नहीं पूछता।** मुहूर्त बतानेवाले मुहूर्तों से हमें जो–जो देने का उद्घोष करते हैं, उनको उन्होंने स्वयं नहीं पाया है। दिग्विजय के सहस्रों अमोघ मुहूर्तों के रहते हम उन देशों के बहुत दिनों तक दास बने रहे जिनका क्षेत्रफल हमारे एक प्रदेश के बराबर है। आज का अधिकांश ज्योतिषी वैदिक मुहूर्तों के नाम तक को भूल चुका है। मुहूर्त के नाम पर जो देखता है वह सब विदेशी है और उसके जन्म–स्थान में उसकी कोई पूछ नहीं है। वे फलित के कूड़े–करकट को हमारे यहाँ फेंककर निश्चिन्त हो गए हैं और हमने उसे सर्वसौख्यप्रद कहकर गले में बाँध रखा है।

क्रमशः

चाणक्यपुरी, अमेठी
उ.प्र.–227405

☞ पृष्ठ 07 का शेष

सफल जीवन

गौरव टिका हुआ है। इसके लिए आहार, व्यायाम, निद्रा, ब्रह्मचर्य (=संयम) के साथ सफाई, प्रसन्नता बहुत आवश्यक हैं। संयम तो सभी अंगों के साथ जुड़ा हुआ है। इन सबका सांझा रूप ही शारीरिक शिक्षा, चिकित्साशास्त्र है। संयम तथा सही ज्ञान के अभाव में चिकित्सा का अधिक सहारा लेना पड़ता है। हाँ, दुर्घटना से होने वाले रोग तो कम ही होते हैं। अधिकतर असंयम ही विकार का कारण बन कर रोग की जड़ बनता है अतः आहार आदि जीने के लिए जैसे, जितने ज़रूरी हैं, यह हमारा रोज़ का अनुभव साथ–साथ बताता जाता है कि प्रतिदिन के जीवन में कौन–कौन सा, कितना, किया गया भोजन हमारे लिए लाभदायक या हानिकारक होता है। यह अनुभव प्रत्येक जैसे स्वयं सरलता से कर लेता है ऐसे ही मेरे लिए क्या उचित है या अनुचित है, अच्छा है या बुरा है, इसका निर्णय हर एक स्वयं ले सकता है। इसी को आत्मनिरीक्षण–स्वाध्याय अर्थात् अपनी जाँच आप करना कह सकते हैं। इसका इतना संकेत ही पर्याप्त होगा, अन्यथा विस्तार का तो कोई अन्त नहीं। जैसे कि व्यवहार्य वस्तुओं के भेद से सफाई के अनेक रूप हैं और स्नान भी उसी का एक अंग है। अतः सौ बातों की एक बात है कि स्वास्थ्य सफलता की पहली सीढ़ी है। पुनरपि इस बारे में अधिक इच्छा हो, सुखी कैसे रहें? का ***'पहला सुख नीरोगी काया'*** में देखा जा सकता है।

विनोद – जब यह पहला पग है, तो दूसरा पग क्या है?

मानवेन्द्र – इसका दूसरा पग है– **शैक्षणिक योग्यता**

शिक्षा एक ऐसा कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु है, जिससे सब कुछ प्राप्त होता है या यह एक ऐसी आँख है, जिससे सब कुछ देख, समझ सकते हैं, क्योंकि जानने के बाद ही किसी को बर्तने, कुछ करने में हम सक्षम होते हैं। जैसा कि यन्त्रों के सम्बन्ध में स्पष्ट है। जीने के लिए जो–जो बातें जितनी–जितनी जरूरी हैं, उन सबका ज्ञान देना ही शिक्षा का क्षेत्र और उद्देश्य है। जैसे बोल या लिखकर हम अपने भाव दूसरों से व्यक्त कर सकते हैं और तभी हमारा सामाजिक व्यवहार चलता है। यह भाषा के बिना कठिन है, किससे क्या, कैसे, कितना, कब बोलें? ये सब भाषा के ही जहाँ भेद–उपभेद हैं, वहाँ इसके भाषाशास्त्र अर्थात् व्याकरण, साहित्य (= काव्य) रचनागत रूप हैं। अतएव भाषा के शिक्षा का जहाँ आरम्भ है, वहाँ समय, स्थान, अवसर के साथ गणित, विविध विज्ञान, इतिहास–भूगोल शिक्षा में जुड़ते चले जाते हैं अतः व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, आत्मिक शक्तियों का विकास कर उसे जीने के लिए स्वावलम्बी बनाना ही शिक्षा का संदेश है।

सुरेन्द्र – पढ़ते–पढ़ते व्यक्ति जवान हो जाता है और तब उसकी आँखें खुल जाती हैं। जिससे हर बात में नया अर्थ प्रतीत होता है। तब जवानी की जिम्मेदारियाँ अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए विवश करती हैं।

क्रमशः

182, शालीमार नगर
होशियारपुर–146001

पत्र/कविता

रामकृष्ण खत्री मुखबिर या मुख्य वीर

रामकृष्ण खत्री मूलतः महाराष्ट्र के थे, सो हिंदी की कम जानकारी थी उन्हें। काकोरी केस में पकड़े जाने के बाद उनसे पूछा गया कि क्या वह मुखबिर बनना चाहते हैं, तो उन्होंने बड़े गर्व से इसके लिए 'हाँ' कह दिया, पर जब उन पर इकबाली बयान देने का दबाव डाला गया, तो वे बिफर गए। असल में मुखबिर को उन्होंने 'मुख्यवीर' समझ कर हामी भर दी थी। क्रान्ति पथ एक पका पकाया सिपाही आखिर यह कर भी कैसे सकता था ! इस केस में उन्हें 10 वर्ष की सजा तजवीज की गई। रिहा होने के बाद भी वे चुप नहीं बैठे, बल्कि दूसरे राजनैतिक बंदियों को छुड़ाने की कोशिशों में लगे रहे। आज़ादी के बाद शहीद चंद्रशेखर आजाद के अस्थि कलश की ऐतिहासिक यात्रा, उनकी पिस्तौल के इंग्लैंड से मंगाकर जनता के मध्य प्रदर्शन, काकोरी कांड और आजाद की बलिदान अर्धशती तथा काकोरी में शहीद स्मारक का निर्माण जैसे प्रेरक आयोजन उनकी कोशिशों का ही नतीजा थे। देहरादून में रासबिहारी बोस की शताब्दी का आयोजन करके उन्होंने इतिहास की विस्मृत कड़ियों को जोड़ने का प्रेरण ाादायी उद्यम भी किया।

लखनऊ की सरजमीं पर 1857 में इन्कलाब की बहुत चमकीली इबारत पहले ही लिखी जा चुकी थी, जिसमें बेगम हजरत महल, बिरजिस कद्र, मौलवी अहमदउल्ला शाह के हैरतअंगेज कारनामे थे। एक अनोखे साम्राज्यवाद विरोधी की सबसे बड़ी गवाह यहाँ की ब्रिटिशकालीन रेजिडेंसी की जख्मी दीवारें हैं, लेकिन असहयोग आंदोलन के बाद इस शहर को ख्याति काकोरी के मुकदमें से मिली। समाचार पत्र इसकी खबरों से भर गए। नौ अगस्त, 1925 को देश के दस नौजवान क्रान्तिकारियों द्वारा काकोरी में रेल रोककर सरकारी खजाना लूटने के अभियान ने ब्रिटिश सत्ता को हिलाकर रख दिया। इस केस में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी और रोशनसिंह को 1927 में फाँसी, तो दूसरे क्रान्तिकारियों को लम्बी सजाएँ मिलीं। आज़ादी के बाद खत्री जी ने कैसरबाग लखनऊ को अपना केन्द्र बनाया। 18 अक्टूबर 1996 को लखनऊ में इस अज्ञेय क्रान्तिकारी के निधन से काकोरी युग के एक स्तंभ के ढहने की पीड़ा हुई!

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

बलिदानी गुरु और उनके शिष्य

देश–धर्म पर हो गए, देव गुरु कुरबान।
भारत मां की कर गए, जग में ऊंची शान।।

जग में ऊंची शान, धन्य थे वे बलिदानी।
दुनिया में कर गए, बहादुर अमर–कहानी।।

भारत के सब युवक–युवतियो, धर्म निभाओ।
देशभक्त बलवान बनो, शुभ कर्म कमाओ।।

सारे भारत देश में मुगलों का था ज़ोर।
करते थे पापी यहाँ, पाप रात–दिन घोर।।

पाप रात–दिन घोर, न ईश्वर से डरते थे।
निर्दोषों को दुष्ट ,कत्ल वृथा करते थे।।

ललनाओं की लाज, लूटते थे अन्यायी।
गऊओं पर तलबार, चलाते थे दुखदायी।।

तेग बहादुर सन्त ने, किया धर्म का काम।
दिल्ली में जाकर कहा, मुगलो सुनों तमाम।।

मुगलो सुनों तमाम, प्रभु है जग का स्वामी।
सब के माता–पिता, गुरु है सबका नामी।।

निर्दोषों का कत्ल कराना, धर्म नहीं है।
मानव हो कर पाप कमाना, धर्म नहीं है।।

पापी औरंगजेब ने, किया भयानक पाप।
तेग बहादुर संत को, दिया बड़ा सन्ताप।।

दिया बड़ा संताप, संत का सिर कटवाया।
भूल प्रभु को गया, दुष्ट ने पाप कमाया।।

तेग बहादुर का बेटा,गोविन्द रणबंका।
आया उसको जोश, बजाया रण लड़ ड़का ।।

गुरु गोविन्द ने देश के, किये इकट्ठे वीर।
हत्यारों को दो मिटा, कहा बनो रणधीर।।

कहा बनो रणधीर, जवानो जोश दिखाओ।
अपना प्यारादेश, बचाओ अब योद्धाओ।।

अपने चारों पुत्र, धर्म पर गुरु ने वारे।
नाम अमर कर गए,गुरु गोविन्द जी प्यारे।।

मुगलों से गोविन्द ने, किया घोर संग्राम।
महिमा गुरुगोविन्द की, गाता विश्व तमाम।।

गाता विश्व तमाम, गुरु गोविन्द की गाथा।
भारत मां का किया, जगत में ऊंचा माथा।

गुरु के शिष्यो! खान,पान,पहराव सुधारो।
'नन्दलाल' शुभकर्म, करो, अब जागो प्यारो।।

पं. नन्दलाल निर्भय
आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल 'हरियाणा'
मो. 9813845774, 9728504364

स्वामी दयानन्द ऋषि थे

आचार्य विश्वश्रवा व्यास

स्वामी दयानन्द सरस्वती का कोई गुरु ऋषि नहीं था क्योंकि योग और वेद दोनों जिसको प्राप्त होते हैं वह ऋषि होता है।

स्वामी जी के योगगुरु वेदगुरु नहीं थे और स्वामी जी के वेदगुरु योगगुरु नहीं थे, स्वामी जी में दोनों बातें थीं अतः वे ऋषि थे।

अरविन्द, सायण, विल्सन आदि ऋषि नहीं थे, इन लोगों को वेद नहीं आता था, ये सब वेदज्ञ विद्वान् जानते हैं। इन तीनों के वेदभाष्य उपहासमात्र हैं, केवल भक्तों के लिए ये वेद पण्डित थे।

{स्रोत : आर्यमित्र का महर्षि मोक्ष प्राप्ति विशेषांक, 5 नवम्बर 1972, पृ. 130, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा,}

****

॥ सूर्य नमस्कार ॥

सूर्य प्रकाश अभ्यंकर।
ग्रीष्म काल में चमके दिनकर।
प्रचंड ताप दे दिन भर।
सहस्र मरीचिका फैलाए।
ज्ञानदीप प्रदीप्त करे।
नित दिन घर घर जाए।
जो ऊषाकाल जग जाए।
उत्साह से भर जाए।
अंग–प्रत्यंग भरे उमंग।
स्वास्थ्यवर्धक, ज्ञान–भक्ति, उत्प्रेरक।
धनधान्य पोषक दाता।
ऐश्वर्य समृ(प्रदाता ।
जन जो सम्मुखआता ।
नमस्कार करता अर्घ्य चढ़ाता।
स्वास्थ्य बढ़ाता उत्साह बढ़ाता।
चिरजीवी वो हो जाता।
मांगे उससे समृद्धि
चहुंमुखी विकास हो जाता।
सब पर डाले सम दृष्टि।

अशोक जौहरी

****

डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर में स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग द्वारा हुआ यज्ञ का आयोजन

डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर के स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग द्वारा प्रो. सुधा अरोड़ा जी की सेवानिवृत्ति के उपलक्ष्य पर हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। गुरुकुल करतारपुर से शास्त्री अनुराग विद्यालंकार का वैदिक रीति से हवन यज्ञ विधिवत् रूप से संपन्न करवाने के लिए आभार व्यक्त किया। प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार एवं प्रो. सुधा अरोड़ा ने हवन यज्ञ में मुख्य यजमान की भूमिका निभाई।

प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार ने प्रो. सुधा अरोड़ा को उनकी सेवानिवृत्ति के अवसर पर शुभकामनाएँ दीं और कहा डी.ए.वी उनके समर्पण एवं योगदान को सदैव स्मरण रखेगा। उन्होंने कहा इस वर्ष हम आर्यसमाज का 150वाँ वर्ष मना रहे हैं। आर्य समाज की इमारत में ही 1 जून 1886 को डी.ए.वी. संस्था का पहला स्कूल लाहौर में स्थापित किया गया था। जिससे डी.ए.वी शैक्षणिक संस्थाओं की नींव रखी गई और आज यह डी.ए.वी. परिवार इतना बड़ा हो चुका है कि लगभग 850 के करीब स्कूल और कॉलेज के रूप में फैल चुका है और इसमें 34 लाख से अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

प्रो. सुधा अरोड़ा ने अपने लम्बे कार्यकाल को बेहद सुखद अनुभव बताया और कॉलेज की उन्नति के लिए प्रार्थना की। स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. सुरेश खुराना ने हवन यज्ञ में उपस्थित सभी टीचिंग–नॉन टीचिंग स्टाफ व छात्रों का धन्यवाद किया। उन्होंने विभाग के सभी अध्यापकों का हवन यज्ञ का सफल रूप आयोजन करवाने के लिए भी धन्यवाद किया।

डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल, अमृतसर ग्रीन स्कूल के अंतर्गत 10,000/- रु. नकद पुरस्कार से सम्मानित

डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल, अमृतसर को पंजाब स्टेट कौंसिल फार साईंस एंड टैक्नोलोजी, चंडीगढ़ की ओर से ग्रीन स्कूल प्रोग्राम के अंतर्गत 10,000/– रू. नकद पुरस्कार से सम्मानित किया गया। विद्यालय की प्रिंसीपल डॉ. अंजना गुप्ता ने अत्यंत हर्षपूर्वक बताया कि संसाधनों वायु, जल, भूमि एवं ऊर्जा के संरक्षण एवं सदुपयोग के लिए विशेष प्रयास किये जाते हैं। विद्यालय में सोलर पैनल से विद्युत की भी बचत होती है। प्रयुक्त पानी को पुनर्प्रयोग करने का भी सुप्रबंध किया गया है।

डी.ए.वी. प्रबन्धकीय समिति, दिल्ली के प्रधान पद्मश्री अलंकृत डॉ. पूनम

सूरी जी, श्री वी. के. चोपड़ा, निदेशक, पब्लिक स्कूलज–डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति, नई दिल्ली, विद्यालय के चेयरमैन डॉ. वी. पी. लखनपाल एवं प्रबंधक डॉ. राजेश कुमार ने विद्यालय को इस विशिष्ट उपलब्धि पर हार्दिक बधाई दी और भविष्य में भी ऐसे ही सम्मान प्राप्त करने की शुभकामनाएँ दीं।

जिला प्रबंधकीय काम्पलैक्स, अमृतसर में आयोजित समारोह में विद्यालय को 10,000/– रू. व प्रमाण पत्र देकर पुरस्कृत किया गया।

विज्ञान एवं वातावरण केंद्र द्वारा विद्यालय के पर्यावरण संरक्षण संबंधी प्रयासों की भरपूर सराहना की गई।

प्रिंसीपल डॉ. अंजना गुप्ता ने बताया कि विद्यालय में प्राकृतिक

डीएवी पनवेल में मनाया गया दयानंद एंग्लो वैदिक विद्यालय का स्थापना दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, न्यू पनवेल, मुम्बई के प्रांगण में डीएवी विद्यालय स्थापना दिवस सोल्साह मनाया गया। ध्वजारोहण एवं डीएवी गान से कार्यक्रम का शुभारंभ किया गया।

पश्चात् संगीत विभाग की ओर से सुन्दर भजनों की प्रस्तुति दी गई।

प्रधानाचार्य श्रीमान् सुमंत घोष महोदय जी द्वारा बोर्ड परीक्षा में उत्तम परिणाम के लिए सभी शिक्षकों का अभिवादन किया तथा ओ३म् शब्द के

विद्यालय के सभी शिक्षकों द्वारा हवन का आयोजन किया गया जिसमें वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हुए ईश्वर की प्रार्थना की गई। हवन के महत्व एवं उसके उच्चारण का अवबोधन करवाया। भक्ति पूर्ण वातावरण में अल्पाहार एवं प्रसाद का भी वितरण किया गया।

आर्य समाज मानव सेवा के 150 स्वर्णिम वर्ष 1875 - 2025

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

डी.ए.वी. भूपिन्द्रा रोड, पटियाला में रक्तदान शिविर का आयोजन

डी.ए.वी. संस्था के 140वें स्थापना दिवस पर डीएवी पब्लिक स्कूल पटियाला में महर्षि दयानंद सरस्वती जी की 202वीं जयंती को समर्पित रक्तदान शिविर लगाया गया। विद्यार्थियों के अभिभावकों व शिक्षकवृन्द ने उत्साह दिखाते हुए '127 यूनिट' रक्त दान किया।

श्री योगी सूरी (राष्ट्रीय अध्यक्ष, आर्य युवा समाज) की सद्प्रेरणा एवम् आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पंजाब के तत्त्वावधान में लगाए गए इस शिविर को रोटेरी क्लब, एस.बी. आई बैंक, पटियाला सोशल वेलफेयर सोसाइटी, कुणाल डेवलपर्स, भारत विकास परिषद के सहयोग से स्थानीय राजिन्द्रा अस्पताल के ब्लड बैंक से आई डॉक्टर टीम के द्वारा पूरा किया गया।

इस शुभ अवसर पर पंजाब के स्वास्थ्य मंत्री डॉ. बलबीर सिंह मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। रक्तदाताओं को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने अपने संबोधन में कहा, "तकनीकी प्रगति के बावजूद, रक्त का कोई विकल्प नहीं है और एक यूनिट रक्त तीन लोगों की जान बचा सकता है। हमें रक्तदान के महत्व के बारे में भावी पीढ़ी को समझाना और सिखाना चाहिए।" उन्होंने डी.ए.वी. संस्था को एक महान समाज सेवी संस्था बताया।

प्राचार्य विवेक तिवारी ने मुख्य अतिथि एवं अन्य अतिथिगण का स्वागत किया तथा रक्तदाताओं का धन्यवाद प्रकट करते हुए रक्तदान का महत्त्व बताया कि रक्तदान एक महान कार्य है। इस अवसर पर श्रीमती अनु तिवारी ने विशिष्ट अतिथि के रूप में रक्तदाताओं को अपना शुभ आशीर्वाद दिया।

मुख्य अतिथि और प्राचार्य तिवारी ने रक्तदाताओं को प्रमाण पत्र व स्मृति–चिह्न देकर सम्मानित किया।

जे.सी. डीएवी दसूहा ने पूर्व-छात्र मुकेश रंजन को किया सम्मानित

जगदीश चन्द्र डीएवी कॉलेज, दसूहा के पूर्व छात्र तथा वर्तमान समय में कंस्ट्रक्शन क्षेत्र की बड़ी कंपनी एम.आर.सी. ग्रुप के मालिक तथा सी.ई.ओ. मुकेश रंजन को कॉलेज को उत्तम बनाने के लिए दिए योगदान के लिए विशेष रूप से सम्मानित किया गया।

प्रिंसीपल प्रो. राकेश कुमार महाजन ने बताया कि मुकेश रंजन डी.ए.वी. कॉलेज के पूर्व छात्र रहे हैं तथा वे विद्यार्थी जीवन से ही कॉलेज की प्रगति हेतु अलग–अलग रूपों में योगदान देते आ रहे हैं। कॉलेज को जब कभी भी किसी प्रकार की आवश्यकता होती है, मुकेश रंजन निःस्वार्थ भाव से कॉलेज की सहायता के लिए उपस्थित रहते हैं।

रजिस्ट्रार डॉ शीतल सिंह ने बताया कि मुकेश रंजन का कॉलेज की प्रगति के लिए दिया योगदान शब्दों में वर्णित करना संभव नहीं है। कोई भी ऐसा अवसर नहीं होगा जब कभी मुकेश रंजन का स्मरण किया हो वे उपस्थित न हुए हों। स्टाफ सैक्रेटरी डॉ. अमित शर्मा ने कहा कि मुकेश रंजन का सम्मान कर हम अपने आप को गौरवांवित महसूस कर रहे हैं।

निवेदिका ने बताया कि मुकेश रंजन तथा समूह रंजन परिवार ने कॉलेज को प्रगति शिखर पर ले जाने के लिए हमेशा बहुमूल्य योगदान दिया है।

श्री मुकेश रंजन ने कहा "आज मैं जो भी हूँ, कॉलेज के कारण ही हूं तथा कॉलेज की प्रगति के लिए हमेशा ही प्रयासरत रहूंगा। कॉलेज प्रबंधन 'जब कभी भी किसी भी प्रकार की मेरी सेवा तय करेगा, मैं तन–मन–धन से पूर्ण करने का प्रयास करूंगा।"

डीएवी बी.एस.ई.बी. पटना स्कूल से निकली भव्य शोभायात्रा

डीएवी पब्लिक स्कूल बीएसईबी कॉलोनी में आयोजित चरित्र निर्माण शिविर के दौरान एक भव्य शोभायात्रा निकाली गई। इसमें स्वामी दयानंद सरस्वती के जीवन मूल्यों, आर्यसमाज के आदर्शों के अनुरूप सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संदेश देने वाली झांकी निकाली गई।

शोभायात्रा में बिहार के 49 डीएवी स्कूलों से लगभग 1200 छात्र–छात्राएं और 500 शिक्षक शामिल हुए। पूरे देश से आए योग साधक, संन्यासी, धर्माचार्य और अन्य गणमान्य लोग भी शोभायात्रा में शामिल हुए। शोभायात्रा का नेतृत्व आर्यसमाज के बाबू गंगा प्रसाद, सिक्किम और मेघालय के पूर्व राज्यपाल कर रहे थे।

यात्रा बोर्ड कॉलोनी, राजवंशी नगर, शास्त्री नगर होते हुए संजय गांधी जैविक उद्यान और नेहरू पथ से होते हुए अपने स्कूल तक पहुँची। बच्चों ने इस झांकी में भारत की वैदिक संस्कृति और ऋषि मुनियों के जीवन मूल्यों को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया।

शिविर का समापन संध्या उपासना, पंच महायज्ञ और विजेताओं को पुरस्कार वितरण से हुआ।

कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री मनोज कुमार, आईएएस बिहार लोक सेवा आयोग की उपसचिव, डॉ. अनुपमा और निदेशक डॉ. एस.के. झा ने बच्चों को आशीर्वाद दिया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**